भारत और विश्व के बीच सांस्कृतिक सम्पर्क

(Cultural Transactions between India and the World)

बी.ए. (प्रोग्राम) इतिहास

सेमेस्टर-VII

DISCIPLINE SPECIFIC ELECTIVE (DSE)

COURSE CREDIT-4

As per the UGCF - 2022 and National Education Policy 2020

READING NOTES

भारत और विश्व के बीच सांस्कृतिक सम्पर्क

अनुक्रम

		पेज नं.
इकाई-I	प्राचीन भारत के ग्रीको-रोमन जगत, पूर्व व दक्षिण-पूर्व एशिया तथा तिब्बत के साथ संपर्कों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	1-29
इकाई-II	भारत और विश्व के बीच व्यापारिक नेटवर्क : समुद्री एवं थल मार्ग	30-45
इकाई-III	व्यापार एवं वाणिज्य का अंतर-सांस्कृतिक प्रभाव	46-61
इकाई-IV	व्यापार एवं सांस्कृतिक विनिमय के प्रमुख कारक : व्यक्ति एवं क्षेत्र	62-86

Printed at: Vikas Publishing House Pvt. Ltd. Plot 20/4, Site-IV, Industrial Area Sahibabad, Ghaziabad - 201 010 (1000 Copies) October 2026

प्राचीन भारत के ग्रीको-रोमन जगत, पूर्व व दक्षिण-पूर्व एशिया तथा तिब्बत के साथ संपर्कों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(Historical Background for Early India's Contact with Greco-Roman World, East and South East Asia, and Tibet)

1.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को निम्नलिखित से परिचित कराना है–

1. **व्यापारिक नेटवर्क्स का अध्ययन :** इस इकाई का मुख्य उद्देश्य उन थल और जल व्यापारिक मार्गों का विश्लेषण करना है जिन्होंने भारत को ग्रीको-रोमन संसार, पूर्वी एशिया और तिब्बत से जोड़ा। विद्यार्थियों से अपेक्षा है कि वे कालान्तर में विकसित हुए इन व्यापारिक संबंधों की जटिलताओं को समझें।
2. **साक्ष्यों का मूल्यांकन :** अंतर-साँस्कृतिक आदान-प्रदान से जुड़े पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों का परीक्षण करना।
3. **साँस्कृतिक प्रसार के कारक :** धार्मिक एवं साँस्कृतिक विचारों के संचरण में प्रमुख माध्यमों और प्रक्रियाओं को रेखांकित करना तथा इनमें विशिष्ट व्यक्तियों एवं स्थानीय केंद्रों के योगदान को समझना।
4. **भौगोलिक व राजनीतिक संदर्भ :** क्षेत्र में होने वाले साँस्कृतिक विनिमय को प्रभावित करने वाले भिन्न-भिन्न भौगोलिक और राजनीतिक संदर्भों को स्पष्ट करना।
5. **आदान-प्रदान का समग्र परिणाम :** यह अध्याय इस बात की व्याख्या करता है कि इन साँस्कृतिक आदान-प्रदानों का भाषा, साहित्य, कला के विविध रूपों तथा जनसांख्यिकी पर क्या प्रभाव पड़ा।

इसके अतिरिक्त, विद्यार्थियों को प्राचीन भारत और शेष विश्व के बीच साँस्कृतिक आदान-प्रदान को लेकर इतिहासकारों के विभिन्न दृष्टिकोणों को समझना आवश्यक है, जिसके लिए धर्म, व्यापार और शासन के बहुआयामी अंतर्संबंधों की समझ होना अनिवार्य है।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

यह इकाई ग्रीको-रोमन जगत, पूर्व एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा तिब्बत के साथ प्राचीन भारत की व्यापक साँस्कृतिक और व्यापारिक गतिविधियों के इतिहास का अध्ययन करती है। यह

अंतर-साँस्कृतिक विनिमय का अध्ययन करने के लिए एक सुदृढ़ भौगोलिक (स्थानिक) और कालिक (temporal) आधार प्रस्तुत करती है। इन संपर्कों का आरंभ लंबी दूरी के उन व्यापारिक नेटवर्कों के माध्यम से हुआ, जिनमें स्थलीय मार्ग तथा समृद्ध समुद्री बाजार दोनों शामिल थे।

200 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी के मध्य पश्चिमी हिंद महासागर के समुद्री मार्गों से ग्रीको-रोमन जगत और पूर्वी देशों के बीच व्यापारिक अंतःक्रिया में तीव्र वृद्धि हुई। रोमन सम्राट ऑगस्टस के काल में यह व्यापार व्यवस्थित रूप से विस्तारित हुआ, जिसमें दक्षिण-पश्चिम मानसूनी हवाओं की आवधिक प्रकृति को समझकर नौवहन विशेषज्ञ हिप्पालस (Hippalus) ने लाल सागर से सीधे अरब सागर पार कर भारत पहुँचने का मार्ग सुलभ बनाया। इस व्यापारिक विनिमय का विस्तृत विवरण प्रथम शताब्दी ईस्वी के ग्रीक व्यापारी की मार्गदर्शिका **'पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई'** (Periplus Maris Erythraei - PME) में मिलता है। वहीं रोमन इतिहासकार प्लिनी द एल्डर (Pliny the Elder) ने भारत से विलासिता की वस्तुओं के आयात के कारण रोम से अत्यधिक स्वर्ण-मुद्रा निष्कासन पर चिंता व्यक्त की थी। दक्षिण भारत में विंध्य क्षेत्र के दक्षिण से प्रचुर मात्रा में मिलीं रोमन सोने और चाँदी की मुद्राएँ (जो मुख्य रूप से धातु-पिंड/बुलियन के रूप में प्रयुक्त होती थीं) इस विशाल आर्थिक लेन-देन की पुष्टि करती हैं। कोरोमंडल तट पर स्थित **अरिकामेडु** (पेरिप्लस में उल्लिखित Pōdoukē) जैसे प्रमुख बंदरगाह इंडो-रोमन व्यापारिक केंद्र थे, जहाँ से अरेटाइन मृद्भांड (Arretine ware) तथा एम्फोरा (amphorae) के अवशेष प्राप्त हुए हैं। भारत से मुख्य रूप से उत्तम मोती, हाथीदाँत, रेशमी वस्त्र और सर्वाधिक माँग वाली **काली मिर्च** का निर्यात किया जाता था।

पूर्वी और मध्य एशियाई क्षेत्रों में भारत का संपर्क मुख्यतः **रेशम मार्ग** (Silk Routes) के विस्तृत स्थल-नेटवर्क द्वारा संचालित होता था। यह मार्ग न केवल यूरो-एशियाई महाद्वीप में रेशम व्यापार का आधार था, बल्कि भारत से चीन तक बौद्ध धर्म के प्रसार का मुख्य संचरण मार्ग भी बना। कुषाण साम्राज्य (जिसका विस्तार बैक्ट्रिया से गंगा घाटी तक था) ने ऐसी व्यापार-अनुकूल नीतियाँ अपनाईं जिससे भारत-यूनानी कला शैली (Indo-Greek school of Buddhist art) का विकास हुआ और मध्य एशिया तथा चीन में बौद्ध मत का विस्तार संभव हो सका। बाद में चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में किदार (Kidāra) तथा अलचोन हूणों (Alchon Huns) के आव्रजन ने भी थल मार्गों पर नियंत्रण बनाकर इस बौद्ध साँस्कृतिक विस्तार को गति प्रदान की।

भारत और तिब्बत के बीच औपचारिक संबंधों का सूत्रपात 7वीं शताब्दी ईस्वी के प्रथमार्द्ध में **सम्राट स्रोन्ग-त्सन-गम्पो** (Srong-brtsan-sgam-po, 627–649/650 ईस्वी) के शासनकाल में हुआ,

जिन्हें तिब्बती संस्कृति का जनक माना जाता है। बुद्ध के विचारों एवं ज्ञान को अपनाने हेतु उन्होंने अपने दरबारी **थोन-मी संभोट** (Thon-mī Sambhoṭa) को अध्ययन हेतु भारत भेजा। संभोट ने भारतीय लिपि प्रणालियों (जैसे सिद्धमात्रिका) के आधार पर तिब्बती लिपि और व्याकरण का निर्माण किया, जिससे तिब्बती साहित्य एवं संस्कृत बौद्ध ग्रंथों के अनुवाद की नींव पड़ी। इसके साथ ही, नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य **शांत रक्षित** के सहयोग से बिहार के ओदंतपुरी विहार के प्रतिरूप पर तिब्बत में प्रथम **साम-यस** (bSam-yas) बौद्ध मठ (लगभग 767 ईस्वी) की स्थापना की गई।

दक्षिण-पूर्व एशिया में साँस्कृतिक प्रभाव मुख्य रूप से बंगाल की खाड़ी के समुद्री व्यापार मार्गों से विस्तारित हुआ, जिसका संचालन मुख्यतः दक्षिण भारतीय व्यापारियों एवं पोत-वाहकों द्वारा किया जाता था। इसके परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में "भारतीयकरण" की प्रक्रिया दिखाई देती है, जो 4थी-5वीं शताब्दी ईस्वी के संस्कृत अभिलेखों, भारतीय वर्णमाला के प्रयोग तथा सुमात्रा एवं जावा में दक्षिण भारतीय शैली पर आधारित प्रशासनिक राज्यों के उदय में स्पष्ट होती है। 7वीं से 11वीं शताब्दी ईस्वी तक इंडोनेशिया का **श्रीविजय साम्राज्य** (Śrī-vijaya) बौद्ध शिक्षा का वैश्विक केंद्र बन गया, जबकि कंबुज (कंबोडिया) में राजा जयवर्मा VII जैसे शासकों ने महायान बौद्ध परंपरा को संरक्षण दिया।

1.3 ग्रीको-रोमन संसार और पश्चिमी व्यापारिक अक्ष (The Greco-Roman World and the Western Trade Axis)

व्यापार और साँस्कृतिक विनिमय के व्यापक नेटवर्क की स्थापना एवं संचालन (जो लगभग 200 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी तक फैला था) ने भूमध्य सागरीय द्रोणी को भारत से जोड़ा। यह अक्ष रोमन साम्राज्य और भारत के बीच के संबंधों का अन्वेषण करता है, जो मुख्य रूप से आर्थिक कारकों से प्रेरित था।

1.3.1 व्यापारिक मार्गों का विकास एवं कालक्रम (Development of Trade Routes and Chronology)

पश्चिमी व्यापारिक अक्ष का विकास और कालक्रम (जो भूमध्य सागरीय संसार को प्रारंभिक भारत से जोड़ता है) प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के दौरान साँस्कृतिक विनिमय के विस्तार को समझने के लिए मौलिक है। यद्यपि पाँचवीं सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व से ही हिंद महासागर क्षेत्र में छोटे व्यापारिक नेटवर्क संचालित थे, किंतु इस अक्ष को परिभाषित करने वाला नियमित, लंबी दूरी का व्यापार मोटे तौर पर 200 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी तक विस्तृत है। प्रत्यक्ष रोमन

गतिविधियों का सबसे तीव्र चरण प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के अंत से तीसरी शताब्दी ईस्वी के मध्य के दौरान हुआ।

छिटपुट संपर्कों से नियमित लंबी दूरी के व्यापार में परिवर्तन भूमध्य सागरीय क्षेत्र में हुए भू-राजनीतिक परिवर्तनों से प्रेरित हुआ। 31 ईसा पूर्व में टॉलेमी काल के समाप्त होने के बाद लाल सागर के मिस्र निर्मित समुद्री बंदरगाहों और पश्चिमी भारतीय बंदरगाहों के बीच प्रत्यक्ष समुद्री व्यापार में उल्लेखनीय तेज़ी आई। यह काल आर्थिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर इन मार्गों के व्यवस्थित दोहन की शुरुआत का प्रतीक था, जो ऑगस्टस द्वारा मिस्र के विलय के साथ प्रारंभ हुआ। भारतीय व्यापार का नियमितीकरण और विकास काफी हद तक ऑगस्टस के शासनकाल के दौरान ही संभव हो सका।

इस तेज़ी का मुख्य कारण प्राकृतिक घटकों पर नियंत्रण पाना था। यद्यपि भारतीय, अरब और फारसी नाविक मानसूनी हवाओं की प्रकृति को पहले से ही समझते थे, किंतु शास्त्रीय ग्रंथों में 'हिप्पालस' नाम से प्रसिद्ध मानसूनी हवाओं के व्यवस्थित उपयोग ने लाल सागर के बंदरगाहों से सीधे दक्षिण भारत तक की सीधी यात्रा को सुलभ बनाया, जिससे 100 ईसा पूर्व या उससे कुछ समय पूर्व प्रत्यक्ष समुद्री यात्राएँ संभव हो सकीं।

लाल सागर रोमन साम्राज्य में प्रवेश करने वाली पूर्वी वस्तुओं के मुख्य मार्ग या "फ़नल" (कीप) के रूप में कार्य करता था। रोमन व्यापार संचालन मायोस हॉर्मोस और बेरेनिके जैसे मिस्र के प्रमुख बंदरगाहों पर निर्भर था, जो रेगिस्तानी सड़कों के माध्यम से नील नदी से जुड़े थे और अंततः अलेक्जेंड्रिया से जुड़े हुए थे। ग्रीक ग्रंथ **'पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई'** (व्यापारी की मार्गदर्शिका) पूर्व के साथ रोम के व्यापार की व्यापक रूपरेखा प्रदान करता है। यह मार्गदर्शिका प्रथम शताब्दी ईस्वी के दौरान इन समुद्री यात्राओं, बंदरगाहों और आंतरिक व्यापारिक केंद्रों के बारे में विशिष्ट विवरणों को सुरक्षित रखती है। शास्त्रीय लेखक प्लिनी द एल्डर ने भी लाल सागर से भारत तक की यात्रा को प्रलेखित किया, यद्यपि उनका दृष्टिकोण रोम से होने वाले वित्तीय निष्कासन को लेकर नैतिकवादी था।

यह नेटवर्क अरब सागर पार करके भारत के विभिन्न स्थानों तक फैला हुआ था, जो माल के अंतरण केंद्र (transhipment points) के रूप में कार्य करते थे:

1. **बर्बरिकॉन :** सिंधु नदी के मुहाने के निकट स्थित एक बंदरगाह।
2. **बारिगाज़ा (आधुनिक भड़ौच) :** नर्मदा नदी पर स्थित, जो पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई में उल्लिखित सबसे महत्त्वपूर्ण विदेशी बंदरगाह था। बारिगाज़ा का महत्त्व बैक्ट्रिया, गंगा

घाटी तथा निचली कृष्णा घाटी तक पहुँचने वाले आंतरिक मार्गों से इसके जुड़ाव के कारण था।

3. **मुज़िरिस (संभवतः पट्टनम) :** मालाबार तट पर चेर साम्राज्य का प्रमुख बंदरगाह।
4. **पोदुके (अरिकामेडु) :** कोरोमंडल तट पर स्थित एक स्थल, जहाँ से रोमन मृद्भांड (जैसे अरेटाइन पात्र और एम्फोरा के टुकड़े) प्राप्त हुए हैं और यह इंडो-रोमन व्यापार के अध्ययन का प्रमुख केंद्र बना।

इस व्यापारिक प्रणाली को महत्त्वपूर्ण आर्थिक समर्थन की आवश्यकता थी। इसे राजनीतिक समर्थन की भी आवश्यकता थी। व्यापारिक संबंध पूर्णतः निरंतर नहीं थे; फिर भी, यह व्यापार सामान्यतः पारस्परिक लाभ पर आधारित था। पश्चिमी प्रतिष्ठा ने इस व्यापार को समर्थन दिया। निरंतरता सुनिश्चित करने के लिए व्यापार का पर्याप्त विनियमन किया गया था। व्यापारिक मार्गों में प्रतिस्पर्द्धा भी शामिल थी। यह प्रतिद्वंद्विता लाल सागर और फारस/अरब की खाड़ी के बीच थी। लाल सागर में रोमन भागीदारी बढ़ी, जबकि खाड़ी अक्ष पृथक बना रहा। अरब-फारसी व्यापारी प्रायः इस अक्ष को नियंत्रित करते थे। वे अपोलोगोस और ओमाना जैसे बंदरगाहों के माध्यम से वस्तुओं का परिवहन करते थे।

हिंद महासागर के साथ रोमन व्यापार की विशेषता तीव्र विनिमय थी। इस व्यापार में मुख्य रूप से विलासिता की वस्तुएँ शामिल थीं। भारत काली मिर्च, रत्न और रेशम जैसी वस्तुओं का निर्यात करता था। बदले में, रोम सोने, चाँदी और निर्मित वस्तुओं की आपूर्ति करता था। इस सक्रिय व्यापार प्रवाह ने हिंद महासागर में रोमन रुचि को निरंतर बनाए रखा। इस निरंतर रुचि को राजनयिक संपर्कों द्वारा समर्थन मिला। यह गतिविधि प्रारंभिक रोमन काल के उत्कर्ष के बहुत बाद तक जारी रही। यह व्यापार सातवीं शताब्दी के आरंभ या मध्य तक चलता रहा।

पूर्वी वस्तुओं की रोमन माँग अत्यधिक थी। परंपरागत रूप से, इन वस्तुओं को विलासिता का सामान माना जाता था। किंतु काली मिर्च और सुगंधित द्रव्य जैसी वस्तुएँ रोमन जीवनशैली की अनिवार्य आवश्यकता बन गईं। औषधीय और धार्मिक प्रयोजनों के लिए इनकी आवश्यकता थी। रोमन सोने और चाँदी के सिक्के बड़ी मात्रा में पूर्व की ओर प्रवाहित हुए। प्लिनी द एल्डर का दावा था कि भारत प्रतिवर्ष "5 करोड़ सेस्टरसेस से कम नहीं" अवशोषित करता था। इन मूल्यवान सिक्कों का उपयोग मुख्य रूप से दक्षिण भारत में किया जाता था। भार के अनुसार विनिमय हेतु इनका उपयोग अक्सर धातु-पिंड (बुलियन) के रूप में होता था।

यद्यपि व्यापार के चरमोत्कर्ष को पारंपरिक रूप से प्रारंभिक रोमन काल (ऑगस्टस से मार्कस ऑरेलियस) में रखा जाता है, किंतु नए साक्ष्य इस समयरेखा का विस्तार करते हैं। इंडो-रोमन व्यापार की समयसीमा सातवीं शताब्दी के आरंभ या मध्य तक विस्तृत है। चौथी शताब्दी और उसके बाद क्लिस्मा और आइला जैसे लाल सागर के बंदरगाहों पर तीव्र गतिविधि देखी गई। बेरेनिके में भी चौथी शताब्दी के मध्य के बाद से गतिविधियों का पुनरुत्थान देखा गया। पुरातात्विक साक्ष्य पाँचवीं और छठी शताब्दी ईस्वी के आरंभ तक काली मिर्च और इंडो-पैसिफिक मनकों जैसे भारतीय आयातों की निरंतरता को दर्शाते हैं। सातवीं शताब्दी तक इथियोपिया और दक्षिण अरब के साथ रोमन राजनयिक संबंध बने रहे। इसके अलावा, उत्तर-रोमन प्रकार के एम्फोरा का उत्पादन सातवीं शताब्दी तक होता रहा, जिससे यह संकेत मिलता है कि व्यापार उत्तर-रोमन/बायज़ेंटाइन काल में भी अच्छी तरह जारी रहा।

1.3.2 साहित्यिक एवं दस्तावेज़ी साक्ष्य (Textual Evidence and Trade Documentation)

ग्रीको-रोमन संसार से संबंधित दस्तावेज़ी साक्ष्य अनिवार्य हैं। इन्होंने पारंपरिक रूप से इंडो-रोमन व्यापार के मुख्य साक्ष्य का निर्माण किया। फिर भी, इन सभी स्रोतों के अंतर्निहित पूर्वाग्रहों और सीमाओं के कारण इनका गहन समालोचनात्मक मूल्यांकन आवश्यक है।

हमारा ज्ञान विविध विधाओं के आधार पर टिका है। ये विधाएँ सामूहिक रूप से इस लंबी दूरी के व्यापार के विस्तार और प्रकृति को परिभाषित करती हैं। उदाहरणों में व्यावहारिक नौवहन मार्गदर्शिकाएँ शामिल हैं, जैसे पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई। हम दार्शनिक ग्रंथों पर भी निर्भर हैं। इसके अतिरिक्त, अल्पकालिक प्रशासनिक अभिलेख भी साक्ष्य प्रदान करते हैं, जिनमें ओस्ट्राका (मृद्भांडों के टुकड़ों पर लिखे लेख) शामिल हैं। सामूहिक रूप से ये स्रोत इस लंबी दूरी के वाणिज्य के दायरे और स्वरूप को निर्धारित करते हैं।

एक ग्रीक व्यापारी की यात्रा मार्गदर्शिका, पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई (PME), एक विशिष्ट और स्पष्ट स्रोत है। इसका लेखक संभवतः अलेक्जेंड्रिया या सीरिया का निवासी था। इस ग्रंथ का कालक्रम 40 से 70 ईस्वी के मध्य का है। यह नाविकों और व्यापारियों के लिए तैयार की गई एक व्यावहारिक मार्गदर्शिका है। यह पुस्तक पूर्व के साथ रोम के व्यापार की व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत करती है। यह 66 संक्षिप्त अनुभागों में विभाजित है, जो जलमार्गों, बंदरगाहों और विनिमय की वस्तुओं का वर्णन करते हैं। PME उपयोग किए जाने वाले प्रमुख बंदरगाहों का विस्तृत विवरण देता है, जिनमें लाल सागर पर स्थित मायोस हॉर्मोस और बेरेनिके शामिल हैं। यह प्रमुख भारतीय व्यापारिक केंद्रों के नाम भी बताता है, जैसे बारिगाज़ा (भरुकच्छ) और मुज़िरिस।

PME का अत्यधिक महत्त्व इसकी विशिष्टता में निहित है। यह ऐसी कई वस्तुओं को प्रलेखित करता है जो पुरातात्विक रूप से अब उपलब्ध नहीं हैं। इन वस्तुओं में घी या तिल का तेल शामिल है। यह मौजूदा पुरातात्विक निष्कर्षों के ज्ञान का पूरक है। पेरिप्लस की सटीकता को निरंतर स्वीकार किया जाता रहा है, विशेष रूप से दूरियों के वर्णन और प्राचीन स्थलों की पहचान के संदर्भ में। विद्वान PME को द पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी कहते हैं।

इसके विपरीत, प्लिनी द एल्डर की **'नैचुरल हिस्टोरिया'**, जो 77 ईस्वी के आसपास पूर्ण हुई 37 पुस्तकों की एक लैटिन ज्ञानकोश है, एक समानांतर किंतु दार्शनिक रूप से भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। ऐतिहासिक व्यक्तित्व प्लिनी ने अपनी पुस्तक 6 और 12-13 में हिंद महासागर व्यापार में शामिल देशों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी दी, जिसमें लाल सागर से भारत तक की यात्रा का विवरण शामिल है। हालाँकि, प्लिनी ने नैतिकवादी रुख अपनाते हुए रोमन समाज पर पूर्वी व्यापार के प्रभावों पर दुख व्यक्त किया और पूर्व की ओर मुद्रा के निष्कासन की शिकायत की। उन्होंने अनुमान लगाया कि भारत, रोमन साम्राज्य की संपत्ति का प्रतिवर्ष 5 करोड़ सेस्टरसेस से कम अवशोषित नहीं करता था। प्लिनी ने मानसूनी हवाओं (हिप्पालस) की खोज का श्रेय उसी नाम के एक ग्रीक नाविक को देते हुए प्रत्यक्ष समुद्री यात्रा के महत्त्वपूर्ण विकास का उल्लेख किया, जो तटीय मार्गों से बचने और भारत तक लंबी दूरी की यात्रा को सक्षम करने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण था।

इन महान साहित्यिक स्रोतों के अलावा, अभिलेखीय और दस्तावेज़ी ग्रंथ सूक्ष्म आर्थिक विवरण प्रदान करते हैं। मिस्र के पूर्वी मरुस्थल से प्राप्त पपायरस और ओस्ट्राका (मृद्भांड के टुकड़ों) पर लिखे दस्तावेज़ व्यापार के परिचालन विवरण की पुष्टि करते हैं। कॉप्टोस से प्राप्त 90 ओस्ट्राका के संग्रह में **निकानॉर अभिलेखागार** (6 ईसा पूर्व से 68/69 ईस्वी) नील नदी और लाल सागर के बंदरगाहों के बीच चलने वाली एक शिपिंग फर्म की रसीदें हैं, जिसमें खाद्यान्न और व्यापारिक वस्तुओं की सूची है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण **मुज़िरिस पपायरस** है, जो दूसरी शताब्दी ईस्वी के मध्य का एक कानूनी अंश है। यह दस्तावेज़ एक समुद्री ऋण अनुबंध को प्रलेखित करता है और लाल सागर से अलेक्जेंड्रिया तक माल के परिवहन के निर्देश देता है। यह जहाज के उच्च मूल्य वाले माल (गंगीय नार्ड, हाथीदाँत और वस्त्र) की मदवार सूची प्रस्तुत करता है और आयातों पर लगने वाले 25% कर की कटौती का ब्योरा देता है। इस पपायरस की खोज PME में वर्णित उच्च-मूल्य वाले वाणिज्य के स्वरूप की पुष्टि करती है।

भारतीय साहित्यिक और अभिलेखीय स्रोत पश्चिमी विवरणों के पूरक हैं, जो इस व्यापार के प्राप्तकर्ताओं के बारे में मूल्यवान संदर्भ प्रदान करते हैं। तमिल साहित्य, विशेष रूप से संगम

कविताएँ, 'यवनों' (रोमन पूर्व से आए विदेशी) का उल्लेख करती हैं और सुगन्धित मदिरा जैसी वस्तुओं के लिए उनकी सराहना करती हैं। जातक कथाओं जैसे बौद्ध ग्रंथ यह प्रकट करते हैं कि स्थानीय अर्थव्यवस्था में लेनदेन के पैमाने के आधार पर मौद्रिक लेनदेन और वस्तु-विनिमय दोनों का उपयोग होता था। इसके अलावा, पश्चिमी दक्कन के अभिलेखों में यवनों का उल्लेख स्थानीय बौद्ध प्रतिष्ठानों के दाताओं के रूप में मिलता है, जो स्थानीय व्यापारिक नेटवर्क में उनके एकीकरण को दर्शाता है। रोमन और भारतीय प्रलेखन का यह संयोजन लोगों की गतिशीलता, आर्थिक विनिमय की तरलता और हिंद महासागर के बंदरगाहों पर प्राप्त भौतिक साक्ष्यों को पूरी तरह से समझने के लिए आवश्यक है।

1.3.3 विनिमय की वस्तुएँ (Goods Exchanged)

ग्रीको-रोमन संसार और प्रारंभिक भारत के बीच व्यावसायिक विनिमय तीव्र था और उच्च मूल्य वाली पूर्वी वस्तुओं के लिए रोमन माँग इसकी प्रमुख विशेषता थी। इस प्रक्रिया ने एक उल्लेखनीय व्यापार असंतुलन को जन्म दिया, जिसका उल्लेख शास्त्रीय लेखकों द्वारा दुख के साथ किया गया है। दर्जनों उत्पादों का कुल व्यापार आकर्षक समुद्री मार्गों और परस्पर जुड़े थल रेशम मार्ग दोनों के माध्यम से संचालित होता था। यद्यपि रेशम और रत्नों जैसी वस्तुओं को विलासिता के सामान के रूप में वर्गीकृत किया गया था और भौगोलिक दूरी तथा उच्च माँग के कारण इनका मूल्य अत्यधिक था, किंतु पुरातात्विक और साहित्यिक साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि मसाले और सुगंधित द्रव्य जैसी वस्तुएँ रोमन जीवनशैली की कार्यात्मक आवश्यकताएँ बन गईं, जो औषधीय, धार्मिक और अंततः पाक कला के उद्देश्यों के लिए आवश्यक थीं।

वस्तुओं का प्रवाह पूरी तरह से पूर्व के पक्ष में था, जिसके कारण क्षतिपूर्तिकारक के रूप में रोमन सिक्कों का भारी निर्यात आवश्यक हो गया। पश्चिमी व्यापारिक अक्ष से होकर जाने वाले भारत के मुख्य निर्यातों में उच्च-मूल्य वाली वस्तुओं की एक जटिल श्रृंखला शामिल थी, जो पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई (PME) जैसे स्रोतों में दर्ज है। भारत से निर्यात में मुख्य रूप से काली मिर्च शामिल थी, जिसके बारे में प्लिनी ने उल्लेख किया था कि यह रोम में आश्चर्यजनक रूप से फैशन में आ गई थी। उत्तम मोती, हाथीदाँत और वस्त्र भी बहुतायत में निर्यात किए जाते थे, जिनमें रेशमी वस्त्र (संभवतः चीन/सेरिका से पुनर्निर्यातित) तथा सूती वस्त्र एवं धागे शामिल थे, जो भारत के मुख्य औद्योगिक निर्यात के रूप में कार्य करते थे। अन्य भारतीय वस्तुओं में गंगीय नार्ड और मलाबथ्रम (दालचीनी का पत्ता) जैसे सुगंधित द्रव्य, पारदर्शी रत्न (हीरा, नीलम, वैडूर्य), गोमेद (ओनिक्स), अकीक (अगेट) और कछुए की खोल शामिल थे। रोमन जगत में इन आयातों से सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी।

बदले में, भारत को किए जाने वाले रोमन निर्यातों में निर्मित वस्तुएँ शामिल थीं, जिनमें विशिष्ट वस्त्र, काँच का सामान, ताँबा, राँगा (टिन) और सीसा शामिल थे। सीरिया और अलेक्जेंड्रिया की विशेषता वाले उच्च गुणवत्ता के काँच के सामान की पुष्टि मध्य एशिया और चीन से प्राप्त साक्ष्यों से होती है। विलासिता से संबंधित आयातों में भूमध्य सागर द्वारा आपूर्ति किया जाने वाला मूँगा (प्रवाल) शामिल था, जिसका भारत में अत्यधिक व्यावसायिक और धार्मिक मूल्य था। रोमन निर्मित वस्तुएँ पुरातात्विक रूप से अरिकामेडु जैसे दक्षिण भारतीय व्यापारिक केंद्रों पर दिखाई देती हैं, जहाँ से अरेटाइन पात्र (लाल-चमकदार मृद्भांड) और एम्फोरा के टुकड़े उत्खनित किए गए थे। ये एम्फोरा मदिरा, तेल और गरुम (मछली का सॉस) जैसे प्रमुख रोमन उत्पादों के लिए आवश्यक पात्र थे।

निरंतर व्यापार घाटे को संतुलित करने के लिए रोमन पक्ष से सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवाह बहुमूल्य धातु के सिक्कों का था। प्लिनी द एल्डर ने गणना की थी कि भारत प्रतिवर्ष साम्राज्य की संपत्ति का 5 करोड़ सेस्टरसेस (कभी-कभी 10 करोड़ सेस्टरसेस तक) अवशोषित करता था। भारत में पाए जाने वाले अधिकांश रोमन सोने और चाँदी के सिक्के जूलियो-क्लाउडियन काल के थे, जो दक्षिण भारतीय निधानों में केंद्रित थे। भार और गुणवत्ता की शाही गारंटी के कारण ये सिक्के सामान्य मुद्रा के रूप में चलने के बजाय धातु-पिंड (बुलियन) के रूप में प्रयुक्त होते थे।

ट्रांस-एशियाई लेन-देन ने भारतीय उपमहाद्वीप के व्यापार को मध्य एशिया और चीन से जोड़ते हुए उच्च-मूल्य, कम-वजन वाली वस्तुओं के परिवहन के लिए शिल्क मार्ग का उपयोग किया। कुषाण साम्राज्य (पहली-तीसरी शताब्दी ईस्वी) के उत्कर्ष के दौरान विलासिता की वस्तुओं का व्यापार होता था, जैसे चीन से रेशम, खोतान से नीलम/जेड, और पूर्वोत्तर अफगानिस्तान से लाजवर्द (लैपिस लाजुली)। ये मूल्यवान वस्तुएँ बौद्ध ग्रंथों में वर्णित "सात रत्नों" (सप्तरत्न) की सूची से मेल खाती थीं, जो यह दर्शाती हैं कि विलासिता की वस्तुओं का प्रसार धार्मिक महत्त्व और संरक्षण नेटवर्क से कैसे जुड़ गया।

1.3.4 भौतिक साक्ष्य : रोमन मुद्राएँ (Material Evidence: Roman Coinage)

रोमन सिक्कों के रूप में भौतिक साक्ष्य इंडो-रोमन व्यापार के संबंध में सबसे अधिक उद्धृत किए जाने वाले साक्ष्य हैं, जो पश्चिमी व्यापारिक अक्ष के आर्थिक कारक का विश्लेषण करने के लिए एक अनिवार्य संसाधन बनाते हैं। मात्रात्मक विश्लेषण से पता चलता है कि भारत से प्राप्त 70% से अधिक चाँदी और 90% से अधिक सोने के रोमन सिक्के निधियों (होर्ड्स) के रूप

में मिले हैं, जो मुख्य रूप से विंध्य के दक्षिण और दक्कन के पठार में केंद्रित हैं। उदाहरण के लिए, अकेले कोयंबटूर जिले से प्रथम शताब्दी के सोने और चाँदी के सिक्कों के कम-से-कम 11 निधियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से अधिकांश सिक्के जूलियो-क्लाउडियन काल के हैं, जिनमें ऑगस्टस और टिबेरियस के सिक्के प्रमुख हैं। इसके विपरीत, उत्तर भारत में रोमन सिक्कों की खोज दक्षिण में मिली मात्रा के एक तिहाई से भी कम है। इसके अलावा, दूसरी शताब्दी के सिक्के आंध्र प्रदेश में अधिक केंद्रित हैं, जो उस अवधि के दौरान पूर्वी तट पर तीव्र गतिविधि का समर्थन करते हैं।

रोमन मुद्रा के भारी आयात का उल्लेख शास्त्रीय ग्रंथों में मिलता है, जिसका उदाहरण प्लिनी द एल्डर की प्रसिद्ध शिकायत है कि भारत प्रतिवर्ष साम्राज्य की 5 करोड़ सेस्टरसेस संपत्ति प्राप्त करता था। विद्वानों के बीच आम सहमति यह है कि प्रथम शताब्दी के रोमन व्यापार द्वारा आयातित सोने और चाँदी की विशाल मात्रा एक अनिवार्य आर्थिक कारक का प्रतिनिधित्व करती थी। बड़ी मात्रा में आयातित सोने और चाँदी के सिक्कों का उपयोग सामान्य मौद्रिक विनिमय में मुद्रा के रूप में चलने के बजाय धातु-पिंड (बुलियन) के रूप में किया जाता था। इस कार्य का समर्थन इस प्रेक्षण से होता है कि प्रायद्वीपीय भारत में सामान्यतः सोने या चाँदी की कोई स्थानीय प्रामाणिक मुद्रा नहीं थी। इस प्रकार, शाही मुहर द्वारा गारंटीकृत सिक्कों को माल के बदले में तौल कर दिया जाता था।

इन साक्ष्यों का कालक्रम एक जटिल उपयोग पैटर्न की तरफ इशारा करता है– कई जूलियो-क्लाउडियन सिक्के साम्राज्य में मुद्रा सुधारों के बाद फ्लेवियन काल या उसके बाद भारत पहुँचे। आयातित सिक्कों का अक्सर पुनः उपयोग किया जाता था या उन्हें विरूपित किया जाता था; उनमें लटकन हेतु बनाने (सजावटी उद्देश्यों) के लिए छेद किए जाते थे या उनके अग्रभाग पर कट लगाकर विरूपित किया जाता था। इस विरुपण को सिक्कों को वापस पश्चिम जाने से रोकने की विधि माना जाता है। इसके अलावा, उत्तर और दक्कन में भारतीय बुल्ले (मृदा या सीसे की ढली हुई चकतियाँ) द्वारा रोमन सिक्कों का अनुकरण किया गया। अनुकरण में कुषाणों द्वारा रोमन 'ऑरियस' के समान ढाले गए सोने के सिक्के भी शामिल थे। पश्चिमी भारत में, क्षत्रप नहपान के चाँदी के सिक्के इतनी उत्तम गुणवत्ता के थे कि वे रोमन डेनेरियस को पिघलाकर बनाए गए हो सकते हैं।

यद्यपि चाँदी और सोने के भंडार प्रारंभिक रोमन काल को परिभाषित करते हैं, काँस्य सिक्के भिन्न कालिक और भौगोलिक प्रवृत्तियों को प्रकट करते हैं। पहली और दूसरी शताब्दी में रोमन ताँबे के सिक्कों की कमी देखी गई। हालाँकि, चौथी शताब्दी के मध्य के बाद से, उत्तर-रोमन

काँस्य सिक्के अधिक संख्या में मिले, विशेष रूप से यमुना और गंगा के मैदानों में, और दक्षिण भारत में करूर तथा मदुरै में केंद्रित हुए। यह उत्तर-रोमन प्रवाह श्रीलंका तक फैला, जहाँ विभिन्न भूमध्यसागरीय टकसालों के हज़ारों काँस्य और ताँबे के रोमन सिक्के खोजे गए हैं।

1.3.5 अंतर-साँस्कृतिक अंतःक्रियाएँ (Cross-Cultural Interactions)

पश्चिमी व्यापारिक अक्ष पर अंतर-साँस्कृतिक अंतःक्रियाओं में जटिल राजनयिक, जनसांख्यिकीय और साँस्कृतिक प्रवाह शामिल थे, जो केवल व्यापारिक लेन-देन से परे फैले हुए थे। राजनयिक मोर्चे पर, संबंध बहुत पहले शुरू हुए; बौद्ध सम्राट अशोक (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य) ने एंटीओकस थियोस और टॉलेमी फिलाडेल्फस जैसे हेलेनिस्टिक शासकों के साथ संबंध बनाए रखे। रोमन साम्राज्यवादी काल के दौरान राजनयिक संबंध जारी रहे, और ऑगस्टस, क्लॉडियस, ट्रेजन (107 ईस्वी) तथा एंटोनिनस पियस के शासनकाल में भारतीय दूतावास रोम पहुँचे। इसके विपरीत, विदिशा से प्राप्त हेलिओडोरस स्तंभ अभिलेख (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के अंत) में भारतीय परंपराओं के प्रति राजनयिक सम्मान का प्रमाण मिलता है, जहाँ इंडो-ग्रीक राजा एंटीआलकिदास द्वारा तक्षशिला से भेजे गए एक ग्रीक राजदूत (यवनदूत) ने स्वयं को विष्णु का भक्त ('भागवत') बताया।

लोगों के आवागमन ने व्यापारिक बस्तियों के निर्माण को सुगम बनाया। दक्षिण भारत के मुख्य बंदरगाह शहरों में बसने वाले "रोमन" सामान्यतः हेलेनिस्ट जगत के वंशज थे, जिनमें ग्रीक-भाषी मिस्री और लेवेंटाइन शामिल थे। भारत में उनकी उपस्थिति की पुष्टि पुरातात्विक निष्कर्षों और 'यवनों' का उल्लेख करने वाले भारतीय ग्रंथों से होती है। महत्त्वपूर्ण रूप से, भारतीय व्यापारी और नाविक भी पश्चिम में उतने ही सक्रिय थे; मायोस हॉर्मोस और बेरेनिके जैसे लाल सागर के बंदरगाहों पर बर्तनों पर मिले तमिल-ब्राह्मी और प्राकृत के उत्कीर्ण लेख (ग्राफिटी) उनकी उपस्थिति को प्रमाणित करते हैं। इसके अलावा, दूसरी शताब्दी ईस्वी का मुज़िरिस पपायरस एक दक्षिण भारतीय व्यापारी और मिस्री एजेंट के बीच व्यावसायिक समझौते का विस्तृत विवरण देता है, जो मानवीय गतिशीलता के द्विपक्षीय स्वरूप को सुदृढ़ करता है।

इस संपर्क से महत्त्वपूर्ण साँस्कृतिक संकरण (हाइब्रिडाइजेशन) हुआ, विशेष रूप से भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्रों में, जो भारतीय, ईरानी, हेलेनिस्टिक और मध्य एशियाई क्षेत्रों के बीच एक महत्त्वपूर्ण केंद्र के रूप में कार्य करते थे। उत्तर-पश्चिम में, यह भाषा, लेखन प्रणाली, राजनीतिक उपाधियों, धार्मिक प्रतीकों और कलात्मक शैलियों में ग्रीक, भारतीय और ईरानी तत्वों के संश्लेषण में दिखाई देता है। इस साँस्कृतिक वातावरण ने गांधार बौद्ध कला शैली को

प्रभावित किया, जिसने हेलेनिस्टिक मॉडलों और रूपांकनों को अपनाया तथा रूपांतरित किया। बदले में रोमन क्षेत्र ने शैलीगत प्रेरणा प्रदान की, जैसा कि भारतीय कारीगरों द्वारा शास्त्रीय विषयों या तकनीकों की नकल करने से प्रमाणित होता है। 'यवन' शब्द स्वयं इस संकरण का उदाहरण है, जिसका अर्थ ग्रीक लोगों से बदलकर किसी भी ग्रीको-ईरानी, हेलेनिस्ट भारतीय या पश्चिम से आने वाले व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने लगा। धार्मिक दृष्टिकोण से, यह अंतःक्रिया बौद्ध धर्म के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि बौद्ध ग्रंथ यवनों के प्रति काफी अनुकूल थे, संभवतः इसलिए क्योंकि ये विदेशी समूह बौद्ध प्रतिष्ठानों के महत्त्वपूर्ण संरक्षक और दाता थे।

1.4 पूर्व एशिया, मध्य एशिया और रेशम मार्ग (East Asia, Central Asia, and the Silk Routes)

प्राचीन भारत का पूर्व एशिया (विशेष रूप से चीन) और मध्य एशिया के साथ लंबी दूरी का संबंध मुख्यतः स्थलीय मार्गों के माध्यम से स्थापित हुआ। यह ऐतिहासिक ढाँचा व्यापारिक नेटवर्क्स, साँस्कृतिक संचरण तथा क्षेत्र की शक्तिशाली राजनीतिक सत्ताओं द्वारा निभाई गई मध्यस्थ भूमिका द्वारा संचालित होता था।

1.4.1 रेशम मार्ग का स्वरूप (The Nature of the Silk Routes)

अकादमिक जगत में 'रेशम मार्ग' (Seidenstraße) के नाम से प्रसिद्ध यह नेटवर्क अंतर्महाद्वीपीय व्यापारिक एवं साँस्कृतिक संचरण का एक विशाल माध्यम था, जिसने मध्य एशिया और ईरान के रास्ते चीन को भूमध्य सागर के पूर्वी तटों से जोड़ा। लगभग 200 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी तक विस्तारित यह नेटवर्क कोई एकमात्र या निश्चित मार्ग न होकर मुख्य एवं सहायक मार्गों की एक गतिशील प्रणाली था; इसीलिए 'रेशम मार्ग' (एकवचन) नाम को एक भ्रामक संज्ञा माना जाता है, जो किसी एक स्थायी मार्ग का भ्रम पैदा करती है।

रेशम मार्ग की भौगोलिक वास्तविकताओं ने ही इसके स्वरूप को निर्धारित किया, क्योंकि यह पृथ्वी के अत्यंत निर्जन और दुर्गम भूभागों से होकर गुजरता था। यह मार्ग पूरी तरह से भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर था, जहाँ यात्रियों को पर्वत शृंखलाओं के किनारे-किनारे चलना पड़ता था, गिने-चुने व्यावहारिक दर्रों का उपयोग करना होता था, और पशुओं के लिए पानी तथा चारागाहों के उपलब्ध स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस नेटवर्क का एक मुख्य संरचनात्मक घटक तारिम बेसिन (आधुनिक शिनजियांग) से होकर गुजरने वाला मार्ग था, जहाँ यात्रा कुनलुन शान की उत्तरी तलहटी और तियान शान पर्वतमाला की दक्षिणी तलहटी में स्थित मरुद्यानों (ओएसिस) की शृंखला द्वारा निर्देशित होती थी। ये मरुद्यान भोजन और जल के आवश्यक स्रोत प्रदान करते थे, साथ ही शुष्क मरुस्थलीय वातावरण में संभावित लुटेरों की संख्या को भी

सीमित रखते थे। इसके अतिरिक्त, उत्तरी पाकिस्तान की उच्च पर्वतीय घाटियों (जैसे ऊपरी सिंधु क्षेत्र) से होकर गुजरने वाले सहायक मार्ग दक्षिण एशिया के मुख्य मार्गों (जैसे उत्तरापथ) को तारिम बेसिन के रेशम मार्ग से सीधे जोड़ते थे, जो लंबी दूरी की यात्रा और व्यापार के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण पथ के रूप में कार्य करते थे।

वाणिज्यिक दृष्टि से, यह नेटवर्क कम वजन वाली उच्च-मूल्य की बहुमूल्य सामग्रियों के परिवहन का कार्य करता था, जो थल परिवहन की कठिनाइयों और लंबी दूरी के कारण अनिवार्य था। यद्यपि इसका नाम चीन के मुख्य निर्यात 'रेशम' के नाम पर रखा गया था (जिसका व्यापार लंबी दूरी के व्यापार के लिए प्रतिकूल समय में भी जारी रहा), फिर भी इसके माध्यम से दर्जनों अन्य वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था। इन वस्तुओं में सोना और चाँदी जैसी बहुमूल्य धातुएँ, रत्न, मूँगा, अंबर (कहरवा), काँच, मसाले, सुगंधित द्रव्य और लोहा शामिल थे, साथ ही घोड़े और दास जैसे सजीव उत्पाद भी शामिल थे। यात्रा की अत्यधिक कठिनाई के बावजूद, यह व्यापार अत्यधिक लाभदायक था, जिससे मिलने वाला लाभ इसमें निहित जोखिमों को सार्थक बना देता था।

व्यापार से इतर, रेशम मार्ग अंतर-साँस्कृतिक संचरण का एक शक्तिशाली इंजन सिद्ध हुआ, जिसने विचारों, धार्मिक मान्यताओं, तकनीकों और कलाकृतियों के वैश्विक प्रवाह को सुगम बनाया। मध्य एशिया ने भारत से चीन तक बौद्ध धर्म के दीर्घकालिक संचरण में एक महत्त्वपूर्ण संक्रमणकालीन क्षेत्र के रूप में कार्य किया, जिसमें भिक्षुओं, ग्रंथों और कला का आवागमन शामिल था। स्वयं रेशम का संचरण धर्म के साथ गहराई से जुड़ गया; इसका उपयोग बौद्ध अनुष्ठानों में पवित्र वस्तुओं के रूप में किया जाने लगा, सम्राटों द्वारा भिक्षुओं को पुरस्कार स्वरूप दिया जाने लगा, और मध्य एशिया में चीनी काँस्य सिक्कों की तुलना में इसे भुगतान के पसंदीदा माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा।

1.4.2 ऐतिहासिक विकास एवं प्रमुख मध्यस्थ (Historical Development and Key Mediators)

रेशम मार्ग के ऐतिहासिक विकास–जिसने भूमध्य सागर और चीन के बीच एक नए व्यापारिक अक्ष का निर्माण किया–की मुख्य विशेषताएँ व्यापारिक गतिविधियों में तीव्र वृद्धि, भू-राजनीतिक परिवर्तन और शक्तिशाली मध्यस्थ राज्यों का उदय थीं। यह लंबी दूरी का थल व्यापार लगभग 200 ईसा पूर्व से ईस्वी सन के आरंभ के मध्य नियमित हुआ, जिसने पूर्व में पृथक रहे सभ्यतागत केंद्रों को मौलिक रूप से जोड़ दिया।

हान राजवंश और "पश्चिम की ओर द्वार खोलना" (The Han Dynasty and the "Opening to the West")

चीनी इतिहासकार पश्चिम के साथ राजनयिक और आर्थिक संबंधों की निश्चित शुरुआत 138 ईसा पूर्व से मानते हैं, जिसे "पश्चिम की ओर द्वार खोलना" कहा जाता है। यह पहल मूल रूप से हान सम्राट वूडी (141–87 ईसा पूर्व) का एक रणनीतिक कदम था, जिन्होंने शक्तिशाली शिओंग्नू (Xiongnu) यायावर महासंघ के विरुद्ध यूएझी (Yuezhi) लोगों के साथ गठबंधन की संभावना तलाशने के लिए झांग शियान (Zhang Qian) के नेतृत्व में ऑक्सस (आमू दरिया) घाटी में एक राजनयिक मिशन भेजा। यद्यपि प्रत्यक्ष सैन्य गठबंधन विफल रहा, किंतु इस मिशन ने पश्चिम में अंशी (पार्थिया) और शेन्ग्दू (भारत) जैसे बड़े राज्यों की उपस्थिति को उजागर किया। इसने दाशिया (बैक्ट्रिया) के बाजारों में "शु के वस्त्र और क्योंग के बाँस" जैसी चीनी वस्तुओं की उपस्थिति को रेखांकित किया, जो चीन के साथ पूर्व-विद्यमान अप्रत्यक्ष व्यापारिक संबंधों का संकेत देते थे। हान राजवंश ने व्यापारिक मार्गों को खुला रखने के लिए किलेबंद चौकियाँ स्थापित करके अपने नियंत्रण का विस्तार किया, 121 और 111 ईसा पूर्व में जियुकुआन और दोनहुआंग जैसे प्रशासनिक क्षेत्रों की स्थापना की, तथा 59 ईसा पूर्व में एक रक्षक-सामान्य (Protector-General) के नेतृत्व में पश्चिमी क्षेत्रों के संरक्षित राज्य की स्थापना की। 115 ईसा पूर्व तक, पार्थियन राजा मिथ्रिडेट्स II और हान सम्राट वूडी ने एक गठबंधन स्थापित किया, जिसका एक उद्देश्य व्यापार को बढ़ावा देना था। इस वाणिज्यिक विस्तार के कारण चीनी व्यापारी मध्य एशिया पार करके पश्चिम की ओर यात्रा करने लगे, जिससे रेशम मार्ग एक नियमित थल मार्ग के रूप में खुल गया।

प्रमुख मध्यस्थ : कुषाण और पार्थियन (लगभग 90–130 ईस्वी)

प्रथम शताब्दी ईस्वी के अंत और दूसरी शताब्दी ईस्वी के आरंभ के मध्य (विशेष रूप से लगभग 90-130 ईस्वी) अभूतपूर्व वाणिज्यिक सुगमता का काल रहा, जब पूरे रेशम मार्ग पर राजनीतिक स्थितियाँ इतनी अनुकूल थीं जितनी मंगोल साम्राज्य के उदय तक दोबारा नहीं हुईं। इस अवधि के दौरान, उत्तरी चीन से रोम तक के थल मार्ग पर केवल चार प्रमुख राज्यों से होकर गुजरना पड़ता था– चीन, कुषाण साम्राज्य, पार्थिया और रोमन साम्राज्य।

- **चीन का नियंत्रण :** लगभग 90 ईस्वी के आसपास, चीनी सेनापति पान चाओ (Pan Ch'ao) ने तुर्किस्तान (आधुनिक शिनजियांग/तारिम बेसिन) पर अधिकार कर लिया, व्यापारिक मार्गों पर सैन्य टुकड़ियाँ तैनात कीं और चीनी व्यापारियों को बसाया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि उत्तरी चीन से तारिम बेसिन तक का मार्ग पूरी तरह से चीनी

नियंत्रण में रहे। उनके पुत्र बान योंग (Ban Yong) ने बाद में 'लेटर हान के इतिहास' के लिए इस काल के मध्य एशिया पर मूलभूत जानकारी प्रदान करने वाली रिपोर्ट तैयार की।

- **कुषाण साम्राज्य :** यूएझी जाति की एक शाखा से उदित कुषाण साम्राज्य ने बैक्ट्रिया, अफगानिस्तान और उत्तर-पश्चिम भारत के भूभागों को नियंत्रित किया। रेशम मार्ग और उत्तरी भारत को मध्य एशिया से जोड़ने वाला मुख्य व्यापारिक मार्ग कुषाण राज्य से होकर गुजरता था। कुषाण काल (पहली से तीसरी शताब्दी ईस्वी) व्यापार और साँस्कृतिक आदान-प्रदान के अनुकूल नीतियों के लिए जाना जाता है। बेग्राम जैसे केंद्रों से युक्त उनका क्षेत्र संभवतः एक सीमा शुल्क (Depot) के रूप में कार्य करता था, जहाँ से गुजरने वाले कारवाओं से एकत्र किया गया कर संग्रहित किया जाता था। कुषाण राज्य इन मार्गों पर गतिविधियों के लिए एक राजनीतिक शक्ति और उत्प्रेरक बन गया, जिसने चीन से रेशम, खोतान से नीलम/जेड और उत्तर-पूर्वी अफगानिस्तान से लाजवर्द जैसी विलासिता की वस्तुओं के लंबी दूरी के व्यापार को सुगम बनाया।
- **पार्थियन मध्यस्थ (अंशी) :** कैस्पियन सागर के निकट केंद्रित पार्थियन (अर्सासिद) साम्राज्य ने पूर्व में सेल्यूसिड साम्राज्य के अधिकांश हिस्से पर नियंत्रण कर लिया था। उन्होंने कुषाणों/चीनियों और रोमन साम्राज्य के बीच मध्यस्थ की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पार्थियन शासक रेशम मार्ग के अपने हिस्सों को अपने ही व्यापारियों और कारवाओं के लिए आरक्षित रखने के प्रति सतर्क थे, और विदेशी व्यापार को केवल अपनी सीमा चौकियों तक ही प्रोत्साहित करते थे। कुषाण क्षेत्र से यात्रा करके आए चीनी व्यापारियों को आमतौर पर मर्व (Merv) में पार्थियनों को अपना रेशम बेचने के लिए बाध्य होना पड़ता था। जैसा कि होऊ-हान-शू (Hou-han-shu) ने सूक्ष्मता से उल्लेख किया है, पार्थियनों ने जानबूझकर चीनियों और "ता-छिन" (रोमन साम्राज्य) के बीच संचार को काट दिया क्योंकि वे लाभदायक रेशम व्यापार पर अपना एकाधिकार बनाए रखना चाहते थे। पार्थियनों ने इस पारगमन व्यापार से भारी समृद्धि अर्जित की, जिसमें वे अक्सर रोमन या भारतीय मूल के सामानों को चीनियों को "रोमन" उत्पाद बताकर बेचते थे ताकि अधिकतम लाभ कमाया जा सके।

उत्तरवर्ती गतिशीलता और नए मध्यस्थ (Later Dynamics and New Intermediaries)

90-130 ईस्वी की यह अनुकूल अवधि स्थायी नहीं रही; 130 ईस्वी तक चीन ने तुर्किस्तान पर अपना नियंत्रण खोना शुरू कर दिया। पहली शताब्दी ईस्वी के मध्य में व्यापारिक संचार में

व्यवधान आया, जहाँ लगभग सात या आठ दशकों तक पश्चिमी क्षेत्रों से संपर्क बाधित रहा। थल मार्गों की इस स्थिरता में गिरावट नए मध्यस्थ समूहों के उदय के साथ घटित हुई।

- **किदार और अलचोन हूण :** 5वीं और 6ठी शताब्दी ईस्वी में, किदार और अलचोन हूण हिंद-ईरानी सीमावर्ती क्षेत्रों में चले गए और प्रमुख मार्गों पर नियंत्रण कर लिया। अलचोन हूणों ने बैक्ट्रिया, भारत, चीन और सोग्डियाना को जोड़ने वाले व्यापारिक मार्गों के पर्वतीय संगम पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया। अपनी छवि के विपरीत, अलचोन हूणों ने थल व्यापार के विकास और बौद्ध नेटवर्क के विस्तार में सहायता की।
- **सोग्डियन :** पूर्व-ईरानी भाषा बोलने वाले सोग्डियन छठी शताब्दी के मध्य तक मध्य एशिया के थल मार्ग पर प्रमुख व्यापारिक शक्ति के रूप में उभरे। अपनी रणनीतिक भौगोलिक स्थिति और घुमंतू प्रकृति के कारण उन्होंने एक विशाल व्यापारिक नेटवर्क का संचालन किया, जिससे रेशम मार्ग के छोटे राज्यों को सहारा मिला। रेशम व्यापार के माध्यम से वे बायज़ेंटाइन साम्राज्य के संपर्क में आए और अंतर-साँस्कृतिक मध्यस्थों के रूप में कार्य किया। सोग्डियन भाषा मध्य एशिया की अंतर्राष्ट्रीय भाषा बन गई, जिसने उनकी स्थिति को और सुदृढ़ किया। सोग्डियन व्यापारी वस्तुओं और संस्कृति के संचरण में महत्त्वपूर्ण थे, जिन्होंने चीन तक अपनी शाखाएँ स्थापित की थीं।
- **तुर्क :** 550-560 ईस्वी के आसपास हेफ्थलाइटों के पतन के बाद, सासानी साम्राज्य के साथ गठबंधन करने वाले तुर्क सरदारों ने पश्चिमी मध्य एशिया पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया। तुर्क आमतौर पर कर वसूलते थे लेकिन अपने सोग्डियन जैसे जागीरदारों की वाणिज्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करते थे, जिससे यात्रियों की सुरक्षा बनी रही और व्यापार का निरंतर प्रवाह सुनिश्चित हुआ।

1.4.3 कुषाण साम्राज्य की भूमिका (पहली-तीसरी शताब्दी ईस्वी)

यायावर यूएझी लोगों की एक शाखा द्वारा स्थापित कुषाण साम्राज्य (लगभग पहली-तीसरी शताब्दी ईस्वी) ने मध्य एशिया, भारतीय उपमहाद्वीप और चीन को जोड़ने वाले थल मार्गों पर अंतर-साँस्कृतिक आदान-प्रदान और लंबी दूरी के व्यापार को गति देने में एक अनिवार्य और गतिशीलता पूर्ण भूमिका निभाई। कुषाण एक शक्तिशाली और वाणिज्यिक दृष्टिकोण वाला राज्य था, जो लगभग 90 से 130 ईस्वी के बीच व्यापार की अत्यंत अनुकूल परिस्थितियों के दौरान उत्तरी चीन से रोम तक रेशम पहुँचाने वाले चार प्रमुख राज्यों में से एक बनकर उभरा।

भौगोलिक एवं राजनीतिक महत्त्व (Geographical and Political Significance)

कुषाण राज्य ने एक विशाल क्षेत्र पर अपनी सत्ता सुदृढ़ की, जिसमें बैक्ट्रिया, अफगानिस्तान और उत्तर-पश्चिम भारत के भाग शामिल थे। रेशम मार्ग और उत्तरी भारत को मध्य एशिया से जोड़ने वाली मुख्य धमनी कुषाण क्षेत्र से होकर गुजरती थी। ऑक्सस द्रोणी से गंगा डेल्टा तक फैले नेटवर्क (जिसे उत्तरापथ के नाम से जाना जाता है) का प्रशासन करके कुषाणों ने व्यापारिक और साँस्कृतिक विनिमय के प्रमुख केंद्रों को प्रभावी रूप से एकीकृत किया। कुषाण वंश के संस्थापक कुजुल कडफिसस ने पहली शताब्दी ईस्वी के मध्य तक हिंदू कुश पार करके स्वात, गांधार और तक्षशिला तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उनके पोते कनिष्क (जिनका शासनकाल कुछ कालक्रमों के अनुसार लगभग 127 ईस्वी में शुरू हुआ) ने पूर्व में पाटलिपुत्र जितने दूरस्थ शहरों पर भी अधिकार करने का दावा किया, जो बंगाल की खाड़ी तक भारत पर नियंत्रण रखने और उत्तरी मार्गों के प्रमुख केंद्रों को एकीकृत करने की मंशा को दर्शाता है।

आर्थिक भूमिका और व्यापार सुगमता (Economic Role and Trade Facilitation)

पहली से तीसरी शताब्दी ईस्वी तक विस्तारित कुषाण काल व्यापार और साँस्कृतिक आदान-प्रदान के प्रति अनुकूल नीतियों द्वारा चिह्नित था। वाणिज्य के लिए भूमि मार्ग के उपयोग की इस स्थिरता का सीधा संबंध धार्मिक संस्थाओं को सहायता देने के लिए प्रयुक्त अधिशेष उत्पन्न करने से था। कुषाण सत्ता आर्थिक रूप से कम वजन वाली उच्च-मूल्य की विलासिता की वस्तुओं के लंबी दूरी के व्यापार पर निर्भर थी। इन वस्तुओं में शामिल थे–

- **चीन से रेशम।**
- **खोतान से नीलम/जेड।**
- **उत्तर-पूर्वी अफगानिस्तान से लाजवर्द।**
- **सोना और चाँदी, जिनकी चीनियों द्वारा अत्यधिक माँग की जाती थी, जो कुषाण क्षेत्र के माध्यम से बहुमूल्य धातुओं के विपरीत प्रवाह का संकेत देता है।**

पारगमन व्यापार में कुषाणों की संलिप्तता का प्रमाण बेग्राम (प्राचीन कपिशा) में हुई एक महत्त्वपूर्ण खोज से मिलता है, जो उत्तरी भारत को मध्य एशिया से जोड़ने वाले मार्ग पर एक प्रमुख शहर था। एक विशाल भवन (संभवतः राजप्रासाद) के दो कमरों से प्राप्त पश्चिम, सुदूर पूर्व और भारत की "दुर्लभ सौंदर्य एवं मूल्यवान वस्तुओं" का विशाल संग्रह यह संकेत देता है

कि ये कमरे सीमा शुल्क संग्रह केंद्र (Customs Depository) के रूप में कार्य करते थे, जहाँ से गुजरने वाले कारवाओं से एकत्र किया गया कर रखा जाता था।

साँस्कृतिक एवं धार्मिक संरक्षण (Cultural and Religious Patronage)

कुषाण साम्राज्य एक मिश्रित संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता था, जो ईरानी, ग्रीक, "शक" और भारतीय प्रभावों के विलय का परिणाम थी। इस राजनीतिक और साँस्कृतिक वातावरण ने व्यापक धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया, विशेष रूप से बौद्ध धर्म के प्रसार को प्रोत्साहित किया।

- **बौद्ध धर्म और वाणिज्य:** बौद्ध धर्म का विस्तार व्यापार की गतिशीलता से गहराई से जुड़ा हुआ था, जहाँ वाणिज्य और धर्म साथ-साथ चलते थे; समृद्धि ने दानों के माध्यम से धर्म को भौतिक आधार प्रदान किया, और बदले में दाताओं को आध्यात्मिक पुण्य प्राप्त होता था। प्रमुख मार्गों पर कुषाण नियंत्रण का अर्थ था कि सशस्त्र कारवाँ बौद्ध प्रचारकों और भिक्षुओं को यात्रा के लिए सापेक्ष सुरक्षा प्रदान करते थे।
- **संरक्षण:** कनिष्क और हुविष्क जैसे कुषाण सम्राटों को पेशावर और मथुरा में स्तूपों और विहारों के निर्माण का श्रेय दिया जाता है, और वे बौद्ध आख्यानों में अनुकरणीय शासकों के रूप में दिखाई देते हैं, जिनकी तुलना कभी-कभी मौर्य सम्राट अशोक से की जाती है। कनिष्क की धार्मिक नीति संभवतः एक "व्यापक धार्मिक नीति" को दर्शाती थी जो भारतीय भूमि पर अपनी वैधता के प्रश्न को संबोधित करने के लिए विभिन्न समूहों को संरक्षण देती थी। कुषाण अधीनस्थ अधिकारियों ने ब्राह्मी, खरोष्ठी और बैक्ट्रियन अभिलेखों में अनेक धार्मिक समूहों को दिए गए दानों को दर्ज किया, जिनमें कभी-कभी कुषाण सम्राट के साथ पुण्य साझा करने का उल्लेख होता है।
- **कला और मुद्राशास्त्र:** कुषाण कला शास्त्रीय प्रभाव को दर्शाती है, जैसा कि गांधार बौद्ध शैली में देखा जाता है। विम कडफिसस ने पहले कुषाण सोने के सिक्के जारी किए। कनिष्क पहला कुषाण शासक था जिसने अपने सिक्कों पर बुद्ध की आकृति को चित्रित किया, जो हेलेनिस्टिक, ईरानी, रोमन और भारतीय देवकुल के देवी-देवताओं की एक विस्तृत श्रृंखला का प्रतिनिधित्व करती थी, जिसका उद्देश्य सैन्य विजय, वैधता और दिव्य स्वीकृति को व्यक्त करना था।

संक्षेप में, एशियाई अंतर-महाद्वीपीय मुख्य धमनियों पर कुषाण साम्राज्य का रणनीतिक भू-राजनीतिक नियंत्रण, उनकी वाणिज्यिक रूप से अनुकूल नीतियाँ और विविध साँस्कृतिक तत्वों

का उनका समावेशन, प्रथम तीन शताब्दियों ईस्वी के दौरान वस्तुओं, लोगों और बौद्ध धर्म के लंबी दूरी के संचरण के लिए उन्हें सबसे महत्त्वपूर्ण मध्यस्थ के रूप में स्थापित करता है।

1.4.4 साँस्कृतिक और धार्मिक संचरण: बौद्ध धर्म का प्रसार (Cultural and Religious Transmission: The Spread of Buddhism)

प्राचीन व्यापारिक मार्ग, विशेष रूप से एशियाई रेशम मार्ग और उनसे जुड़ने वाली धमनियाँ, धार्मिक विचारधाराओं और प्रथाओं के गहरे अंतर-साँस्कृतिक प्रवाह के लिए प्राथमिक माध्यम बने, जिनमें सबसे उल्लेखनीय भारत से मध्य और पूर्व एशिया में बौद्ध धर्म का विस्तार था।

गतिशीलता और आर्थिक विनिमय में बौद्ध धर्म की भूमिका (The Role of Buddhism in Mobility and Economic Exchange)

मुक्ति का सार्वभौमिक धर्म होने के नाते बौद्ध धर्म संरचनात्मक रूप से व्यापार की आर्थिक गतिशीलता से जुड़ा हुआ था, जहाँ धन दानों के माध्यम से धर्म को भौतिक समर्थन प्रदान करता था, और बदले में दाताओं को अपने उपहारों के लिए आध्यात्मिक पुण्य प्राप्त होता था। बुद्ध को दिया गया यह निर्देश कि "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय पथ पर विचरण करो" ताकि "धम्म का उपदेश दिया जा सके", बौद्ध गतिशीलता को धर्मवैधानिक (canonical) स्वीकृति प्रदान करता था। परिणामस्वरूप, बौद्ध प्रचारक, तीर्थयात्री और व्यापारी महाद्वीप भर में रेशम और धार्मिक विचारों दोनों के प्रमुख वाहक बने। "सात रत्नों" (सप्तरत्न) जैसी विलासिता की वस्तुओं का संचरण बौद्ध अनुष्ठानों और अर्थों के साथ जुड़ गया, जिससे उनका मूल्य बढ़ा और उनका बाजार विस्तारित हुआ।

संचरण के मार्ग और प्रमुख कारक (Pathways of Transmission and Key Actors)

बौद्ध धर्म का विस्तार उल्लेखनीय गतिशीलता का संस्थागत इतिहास था, जो मुख्य धमनियों, छोटी सहायक नदियों और "मध्यम मार्गों" सहित विभिन्न मार्गों का अनुसरण करता था जो प्रायः व्यापारियों के मार्गों के साथ आच्छादित होते थे। व्यापारिक मार्गों और सशस्त्र कारवाओं द्वारा प्रदान की गई सापेक्ष सुरक्षा ने प्रचारकों को यात्रा करने की अनुमति दी।

- **संक्रमणकालीन क्षेत्र के रूप में मध्य एशिया :** मध्य एशिया ने भारत से चीन तक बौद्ध धर्म के विस्तार के लिए एक महत्त्वपूर्ण संक्रमणकालीन क्षेत्र के रूप में कार्य किया। इस्लाम के प्रभुत्व से पहले, इस क्षेत्र ने बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम, मनिचैज्म और पारसी धर्म के अनुयायियों के बीच रेशम के लेन-देन को देखा, जो आमतौर पर शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व में रहते थे।

- **गांधार की केंद्रीय भूमिका:** दक्षिण एशिया के उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्रों, विशेष रूप से गांधार ने संचरण के लिए एक स्प्रिंगबोर्ड के रूप में कार्य किया, जिसने दक्षिण एशिया को मध्य एशिया से जोड़ा। गांधार का साँस्कृतिक वातावरण, जो भारतीय, ईरानी, हेलेनिस्टिक और मध्य एशियाई प्रभावों के संश्लेषण द्वारा चिह्नित था, गाँधारी बौद्ध कला के विकास और गाँधारी भाषा में ग्रंथों के निर्माण का कारण बना। इस क्षेत्र के भिक्षुओं, जैसे पेशावर के जिनगुप्त ने अफगानिस्तान और पामीर के रास्ते तारिम बेसिन और चीन तक थल यात्रा की।

- **कुषाण काल:** प्रमुख धमनियों को नियंत्रित करने वाले कुषाण साम्राज्य (1ली-3री शताब्दी ईस्वी) के दौरान, बौद्ध धर्म धार्मिक सहिष्णुता के वातावरण में स्वतंत्र रूप से फैला, जिसे व्यापारी वर्ग की उदारता और स्वयं शासक का समर्थन प्राप्त था। कुषाणों ने अंतर-साँस्कृतिक संपर्क और बौद्ध धर्म के लंबी दूरी के संचरण को सुगम बनाया।

संचरण के रूप: प्रसार बनाम लंबी दूरी का संचरण (Modes of Transmission: Diffusion vs. Long-Distance)

चीन में बौद्ध धर्म का आगमन, विशेष रूप से शुरुआती चरणों में, क्रमिक, बिंदु-दर-बिंदु प्रसार (संपर्क विस्तार) के सरल पैटर्न का पालन नहीं करता था। इसके बजाय, साक्ष्य "लंबी दूरी के संचरण" के मॉडल का समर्थन करते हैं।

- **लंबी दूरी के संचरण की विशेषताएँ :** यह मॉडल शुरुआती चीनी बौद्ध धर्म की विसंगतिपूर्ण विशेषताओं की व्याख्या करता है, जैसे आकस्मिक और रुक-रुक कर संपर्क, लंबे और कठिन मार्ग, फीडबैक की कमी, और उनके मूल संदर्भ से अलग किए गए तत्वों का अमलबद्ध ग्रहण। भारत और चीन के बीच का मध्यवर्ती क्षेत्र तारिम बेसिन (शिनजियांग), चीनी राजधानी लोयांग में विदेशी बौद्ध अनुवादकों की उपस्थिति के बावजूद, कम-से-कम तीसरी शताब्दी ईस्वी के मध्य तक एक "बौद्धिक शून्य" या "केवल पारगमन क्षेत्र" बना रहा।

- **चीन में प्रारंभिक उपस्थिति (उत्तरवर्ती हान काल) :** चीन में नए धर्म का आगमन राजपरिवार से जुड़ा हुआ है, विशेष रूप से लगभग 64 ईस्वी में हान सम्राट मिंगडी के काल्पनिक स्वप्न से। पहले बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद प्रथम शताब्दी ईस्वी के मध्य में लोयांग में विदेशी भिक्षुओं (जैसे भारतीय भिक्षु काश्यप मातंग और धर्मरत्न) द्वारा किया गया था। इसके बाद, पार्थियन राजकुमार आन शिगाओ (An Shigao) जैसे

अनुवादकों के काम ने दूसरी शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्द्ध से इसके प्रसार को गति दी। इस प्रारंभिक चीनी बौद्ध धर्म में दरबारी वृत्तों से जुड़ा एक मिश्रित पंथ, संगठित भिक्षु बौद्ध धर्म का एक केंद्र ("लोयांग का चर्च"), और उप-अभिजात वर्ग के स्तर पर बौद्ध तत्वों का व्यापक ग्रहण शामिल था।

धार्मिक संचरण की भौतिक संस्कृति (The Material Culture of Religious Transmission)

धार्मिक दान की क्रिया संचरण प्रक्रिया में गहराई से समाहित थी-

- **रेशम और अनुष्ठान :** रेशमी वस्त्रों का उपयोग उपहार के रूप में किया जाता था, जो अक्सर बौद्ध अनुष्ठानों में पवित्र वस्तुएँ बन जाते थे। चीनी बौद्ध श्रद्धालु अपनी संपत्ति, अक्सर रेशम के रूप में, बौद्ध संस्थाओं को दान करते थे, जिससे भौतिक संपत्ति बौद्ध पुण्यों के संचय से जुड़ जाती थी। इसके अलावा, तांग राजवंश के सम्राट ताईज़ोंग जैसे शासकों ने भक्ति प्रदर्शित करने के लिए भारत के बोधगया स्थित महाबोधि विहार में अनुष्ठानिक वस्त्र भेजे।
- **अवशेष और स्तूप :** अवशेषों का पंथ सभी बौद्ध संप्रदायों के लिए केंद्रीय था, जहाँ बुद्ध के अवशेषों वाले स्थल तीर्थयात्रा और अनुष्ठानों के केंद्र बन गए थे। स्तूपों में प्रतिष्ठापित अवशेषों की सुवाह्यता (portability) नए क्षेत्रों में बौद्ध भक्ति प्रथाओं और सिद्धांतों को पहुँचाने का एक मूर्त साधन बनी। बुद्ध का पूजन स्तूपों पर केंद्रित था, जो शारीरिक अवशेषों या उनके जीवन से जुड़ी वस्तुओं के स्मारक टीले के रूप में कार्य करते थे।

1.4.5 सोग्डियन तथा अन्य व्यापारी (Sogdians and Other Traders)

पूर्व-ईरानी भाषा बोलने वाले सोग्डियन C.E. की छठी शताब्दी के मध्य तक मध्य एशिया के थल रेशम मार्ग पर सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रमुख व्यापारिक शक्ति के रूप में उभरे। यह शक्ति उनकी रणनीतिक भौगोलिक स्थिति और एक निश्चित राष्ट्र के बिना एक घुमंतू समुदाय के रूप में उनके चरित्र से प्राप्त हुई थी। सोग्डियाना एक एकीकृत साम्राज्य के रूप में नहीं, बल्कि समरकंद और बुखारा सहित नगर-राज्यों के एक ढीले महासंघ के रूप में गठित था। सोग्डियनों की व्यावसायिक पहुँच विशाल थी, जो भारत और चीन को जोड़ने वाले एक बड़े व्यापारिक नेटवर्क तक फैली हुई थी। उनकी भाषाई और साँस्कृतिक भूमिका महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि सोग्डियन भाषा मध्य एशिया की अंतर्राष्ट्रीय भाषा बन गई, जिसने संस्कृति, वस्तुओं, तकनीकों और धार्मिक मान्यताओं के प्रसारक के रूप में उनकी स्थिति को सुदृढ़ किया। चीनी ऐतिहासिक स्रोत अक्सर उन्हें स्पष्ट रूप से एक "व्यापारी जाति" के रूप में पहचानते थे जिनकी प्रेरणा उन्हें "जहाँ भी

लाभ होना था" ले जाती थी। यह अंतर-साँस्कृतिक भूमिका उनके बहुभाषी दलालों और अनुवादकों के रूप में कार्य करने तक विस्तृत थी।

सोग्डियन व्यापारियों की फलने-फूलने की क्षमता मध्य एशिया के जटिल भू-राजनीतिक वातावरण से जुड़ी थी, जहाँ वे अक्सर पाँचवीं से सातवीं शताब्दी तक हेफ्थलाइट्स और तुर्कों सहित शक्तिशाली अधिपति शासकों के तहत जागीरदार के रूप में कार्य करते थे। इन अधिपतियों ने व्यापार की अनुमति देना और उसका समर्थन करना अपने हित में पाया, जिससे कारवाओं की सुरक्षा सुनिश्चित हुई और व्यापार का निरंतर प्रवाह संभव हुआ, भले ही वे कर वसूलते थे। सोग्डियन व्यापारियों ने चीनी मध्य एशिया और मुख्य चीन में बड़े समुदायों और "शाखाओं" की स्थापना की। उत्तरी चीन में, विशेष रूप से उत्तरी राजवंशों के अस्थिर काल के दौरान, सोग्डियन अप्रवासी अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे। इन विदेशी व्यापारिक समुदायों में प्रमुख पद अक्सर **साबाओ** (sabao) के पास होते थे, जो एक उच्च पद था जिसे व्यापारी नेता (सार्थवाह शब्द से व्युत्पन्न) या सोग्डियन समाज का एक अभिजात सदस्य माना जाता था। उनके समुदाय उल्लेखनीय धार्मिक विविधता के केंद्र थे, जहाँ पारसी धर्म (माज़दावाद), बौद्ध धर्म, नेस्टोरियन ईसाई धर्म और मनिचैज्म के अनुयायी एक साथ रहते थे।

सोग्डियनों के अलावा, अन्य व्यापारिक प्रवासियों और राज्य कर्ताओं ने अंतर-एशियाई अक्ष के महत्त्वपूर्ण हिस्सों को नियंत्रित किया। पार्थियन साम्राज्य, जो तीसरी शताब्दी ईस्वी तक फला-फूला, ने जानबूझकर एक मध्यस्थ के रूप में कार्य किया, रेशम मार्ग के अपने हिस्सों को अपने स्वयं के व्यापारियों और कारवाओं के लिए आरक्षित रखा और चीनियों के साथ प्रत्यक्ष रोमन संचार को काटकर लाभदायक रेशम व्यापार पर एकाधिकार करने का प्रयास किया। बाद में, अब्बासिद-तांग काल (सातवीं-नौवीं शताब्दी) के दौरान, यहूदी व्यापारिक समुदाय, जिन्हें **रादानिते** (Radanites, फारसी में "मार्ग जानने वाले") के रूप में जाना जाता था, एक संक्षिप्त अवधि के लिए यूरोप और चीन के बीच पूरे नेटवर्क को कवर करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण एकल समूह बन गया। उन्होंने खज़ार साम्राज्य के माध्यम से कैस्पियन सागर के उत्तर में यात्रा करके मुस्लिम क्षेत्रों को दरकिनार करते हुए मार्ग विकसित किए। अंततः, आर्मेनियाई बाद की शताब्दियों में अत्यंत संगठित थल वाहक के रूप में उभरे, विशेष रूप से सफाविद फारस से, जिन्होंने रूस और पश्चिमी यूरोप तक रेशम पहुँचाने के लिए वोल्गा मार्ग का उपयोग किया। न्यू जुल्फा के आर्मेनियाई व्यापारी अंतर-साँस्कृतिक मध्यस्थता में कुशल थे और अक्सर शासकों और यूरोपीय कंपनियों के लिए विश्वसनीय एजेंट के रूप में कार्य करते थे। रोमन काल में सीरियाई-भाषी व्यापारियों (जिनमें अक्सर ग्रीक, यहूदी और पाल्मायरन शामिल थे) सहित इन विभिन्न समूहों

की भूमिका ने यूरेशियाई महाद्वीप में वस्तुओं, विचारों और धार्मिक मान्यताओं के निरंतर प्रवाह को सुनिश्चित किया।

1.5 तिब्बत और दक्षिण-पूर्व एशिया (Tibet and Southeast Asia)

तिब्बत और दक्षिण-पूर्व एशिया प्रारंभिक भारत के साँस्कृतिक और वाणिज्यिक आदान-प्रदान के दो भौगोलिक एवं कालिक रूप से भिन्न अक्षों को निरूपित करते हैं। दोनों ही क्षेत्रों ने भारतीय उपमहाद्वीप से गहरा प्रभाव ग्रहण किया, जो मुख्य रूप से बौद्ध धर्म के प्रसार के माध्यम से संभव हुआ; किंतु दोनों स्थानों पर इसके प्रसार के माध्यम भिन्न थे–तिब्बत के लिए जहाँ दुर्गम पर्वतीय थल मार्ग प्रमुख थे, वहीं दक्षिण-पूर्व एशिया के लिए प्राथमिक माध्यम समृद्ध समुद्री नेटवर्क बने।

1.5.1 तिब्बत : साक्षरता, धर्म और राजनीतिक सत्ता का आगमन (Tibet: The Introduction of Literacy, Religion, and Political Power)

तिब्बत के ऐतिहासिक रूपांतरण का आख्यान उसके प्रथम महान सम्राट स्रोन्ग-त्सन-गम्पो (Srong-brtsan-sgam-po), जन्म 617 ईस्वी या शासनकाल 627–649/650 ईस्वी के शासनकाल से प्रारंभ होता है, जिन्हें तिब्बती संस्कृति के जनक के रूप में विभूषित किया जाता है। उनके काल में तिब्बत को एक विशाल राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित किया गया, जिसने गोबी मरुस्थल से हिमालय तक तथा मध्य चीन से पामीर तक फैले एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। यह राजनीतिक उपलब्धि बौद्ध धर्म के प्रसार तथा ज्ञान एवं संस्कृति के विकास हेतु आवश्यक वातावरण निर्मित करने में अत्यंत निर्णायक सिद्ध हुई।

तिब्बत में साक्षरता की शुरुआत एक सुविचारित राजकीय पहल थी, जिसका मुख्य उद्देश्य भारत से ज्ञान, विशेष रूप से बौद्ध धर्म के आगमन को सुगम बनाना था। एक लिखित भाषा की अनिवार्यता को समझते हुए सम्राट गम्पो ने प्रत्यक्ष कदम उठाया और अपने एक मेधावी दरबारी थोन-मी संभोट (Thon-mī Sambhoṭa) के नेतृत्व में एक दल को पुरालेख शास्त्र (epigraphy), ध्वनिविज्ञान (phonetics) और व्याकरण का अध्ययन करने के लिए मगध जैसे भारत के प्रसिद्ध शिक्षण केंद्रों में भेजा। लगभग 647 ईस्वी में तिब्बत लौटने पर थोन-मी संभोट ने भारतीय वर्णमाला प्रणालियों (जैसे सिद्धमात्रिका) के आधार पर तिब्बती भाषा के लिए एक वर्णमाला लिपि तैयार की, उसके व्याकरणिक नियमों को स्थापित किया, तथा संस्कृत बौद्ध ग्रंथों का पहला तिब्बती अनुवाद प्रारंभ किया। इस ऐतिहासिक योगदान के कारण उन्हें तिब्बती साहित्य का जनक स्वीकार किया गया।

बौद्ध धर्म के प्रवेश को कूटनीतिक एवं राजनीतिक गठबंधनों के माध्यम से और सुदृढ़ किया गया। 641 ईस्वी में सम्राट गम्पो ने बौद्ध मतावलंबी चीनी राजकुमारी वेन-चेंग (Wen-cheng) से तथा लगभग उसी समय एक नेपाली राजकुमारी से विवाह किया। राजकुमारी वेन-चेंग अपने साथ बुद्ध की एक प्रतिमा (जिसे ल्हासा के जोखांग मंदिर में स्थापित किया गया), रेशम के कीड़ों के अंडे और चीनी संस्कृति लेकर आईं। सम्राट गम्पो ने बौद्ध धर्म के "दस सद्गुणों" (Ten Virtues) के अनुकूल नियमों को लागू करके तथा रामोछे, जोखांग और पोताला महल जैसी प्रमुख धार्मिक संरचनाओं व मंदिरों का निर्माण कराकर इस मत को संस्थागत रूप देना प्रारंभ किया।

बौद्ध धर्म की स्थापना को स्थानीय बोन (Bon) धर्म के अनुयायियों के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा, किंतु इसे निरंतर शाही संरक्षण मिलता रहा। राजा ठ्री स्रोन्ग-दे-त्सन (Khri Srong-lde-brtsan) शासनकाल 754–797 ईस्वी ने प्रामाणिक भारतीय बौद्ध धर्म के प्रसार हेतु नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य शांत रक्षित को तिब्बत आमंत्रित किया तथा बिहार के ओदंतपुरी महाविहार के प्रतिरूप पर तिब्बत के प्रथम बौद्ध मठ 'साम-यस' (bSam-yas) की स्थापना की। जब प्राकृतिक आपदाओं के कारण रुकावट आई, तो शांत रक्षित ने स्वात घाटी के आचार्य पद्मसंभव को आमंत्रित करने का सुझाव दिया, जो तंत्र विद्या तथा उन गूढ़ प्रणालियों में पारंगत थे जो स्थानीय जादू-टोने और अंधविश्वास में डूबी जनता को प्रभावित करने के लिए आवश्यक थीं।

यह प्रक्रिया सम्राट रल-पा-चन (Ral-pa-can, शासनकाल 815–838 ईस्वी) के काल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची, जो धर्म के तीसरे महान शाही संरक्षक थे। उन्होंने पुरोहित वर्ग को विशेष अधिकार प्रदान किए और प्रामाणिक अनुवाद कार्य की देखरेख की। अनुवाद की यह प्रक्रिया अत्यंत सूक्ष्म और व्यवस्थित थी, जिसमें भारतीय विद्वानों (पंडितों) और तिब्बती अनुवादकों (लो-त्सा-वा) को द्वि-स्तरीय या त्रि-स्तरीय प्रणाली में शामिल करके संस्कृत ग्रंथों के शब्दशः और सटीक तिब्बती रूपांतरण तैयार किए गए।

842 ईस्वी में बौद्ध-विरोधी राजा लांग-दर-मा (Glang-dar-ma) की हत्या के बाद मध्य तिब्बत में राजशाही का पतन हो गया। हालाँकि, यह परंपरा पश्चिमी तिब्बत (ङारी - Nga-rī) में जारी रही, जहाँ बाद के शासकों ने राज्य और धर्म दोनों के प्रमुख की दोहरी भूमिका निभाई। उन्होंने ग्रंथों और विद्वानों को लाने के लिए भारत में अभियानों को वित्तपोषित किया, जो बाद के तिब्बती शासन की एक विशिष्ट विशेषता बन गई। 1042 ईस्वी में महान भारतीय विद्वान अतीश (Atiśa) के आगमन ने भारत से अंतिम महान आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान की, जिससे

बौद्ध धर्म ने तिब्बत में गहरी जड़ें जमाईं और एक स्थानीय परंपरा के रूप में विकसित हुआ। अंततः, 1270 ईस्वी में मंगोल सम्राट कुबलई खान द्वारा स-स्क्या (Sa-skya) संप्रदाय के उच्च पुरोहित 'फग्स-पा' (Hphags-pa) को संप्रभुता प्रदान किए जाने पर मध्य तिब्बत में धर्मशास्त्रीय राज्य (theocratic state) का गठन हुआ, जिसने दलाई लामाओं की धार्मिक परंपरा की नींव रखी।

1.5.2 दक्षिण-पूर्व एशिया : समुद्री व्यापार, भारतीयकरण और धार्मिक प्रभुत्व (Southeast Asia: Maritime Trade, Indianization, and Religious Dominance)

दक्षिण-पूर्व एशिया क्षेत्र, विशेष रूप से इसके समुद्री भागों ने, प्राचीन एवं पूर्व-मध्यकालीन अंतर-एशियाई व्यापारिक नेटवर्क में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और साँस्कृतिक रूप से रूपांतरणकारी भूमिका निभाई। यह क्षेत्र जीवंत व्यापारिक गतिविधियों, "भारतीयकरण" की गहन प्रक्रियाओं और धार्मिक प्रभुत्व के बदलते स्वरूपों द्वारा रेखांकित हुआ।

समुद्री व्यापार और वाणिज्यिक महत्त्व (Maritime Trade and Commercial Importance)

प्राचीन समुद्री विनिमय का वाणिज्यिक और रणनीतिक महत्त्व हिंद महासागर की उस विशाल, अंतर-संबद्ध प्रणाली पर टिका था जो दो प्रमुख धमनियों द्वारा संचालित होती थी: लाल सागर और फारस/अरब की खाड़ी। 30 ईसा पूर्व में मिस्र पर रोमन अधिकार के बाद शास्त्रीय काल में चरम पर पहुँचा यह समुद्री नेटवर्क भूमध्य सागरीय संसार और भारतीय उपमहाद्वीप के बीच नौवहन हेतु मानसूनी हवाओं की आवधिक प्रकृति पर पूरी तरह निर्भर था। इस लंबी दूरी के वाणिज्य का विस्तृत विवरण पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई (PME) जैसी व्यावहारिक मार्गदर्शिकाओं में सुरक्षित है।

पूर्व से रोमन साम्राज्य में आने वाली वस्तुओं के लिए लाल सागर एक प्रमुख मार्ग के रूप में कार्य करता था, जिसके लिए मिस्र में मायोस हॉर्मोस और बेरेनिके जैसे प्रमुख रोमन बंदरगाहों की स्थापना आवश्यक थी। भारतीय तटरेखा पर यह व्यापार प्रमुख केंद्रों पर केंद्रित था, जिनमें बारिगाज़ा (गुजरात में आधुनिक भड़ौच) विदेशी व्यापारियों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बंदरगाह था क्योंकि यह उज्जैनी जैसे नगरों के माध्यम से भारतीय आंतरिक भागों से जुड़ा हुआ था। दक्षिण में, चेर साम्राज्य का मुज़िरिस (केरल) बंदरगाह क्षेत्रीय और ग्रीक जहाजों दोनों के संचालन के लिए प्रसिद्ध था। पांडिचेरी के निकट अरिकामेडु (Podukê) जैसे स्थलों से आयातित रोमन अरेटाइन पात्रों और एम्फोरा के पुरातात्विक अवशेष निरंतर आर्थिक और साँस्कृतिक संपर्क की पुष्टि करते हैं। यह व्यापार विलासिता की वस्तुओं (रत्न, रेशम) तथा मसालों और सुगंधित

द्रव्यों (विशेष रूप से काली मिर्च) की रोमन माँग द्वारा संचालित होता था। इस व्यापार की तीव्रता के कारण प्लिनी जैसे शास्त्रीय लेखकों ने रोमन मुद्रा के भारी निष्कासन पर चिंता व्यक्त की थी।

पूर्व की ओर, बंगाल की खाड़ी और दक्षिण चीन सागर में समुद्री व्यापार अरब सागर की भाँति ही प्राचीन काल से फल-फूल रहा था। बंगाल की खाड़ी के पार नौवहन पर भारतीय व्यापारियों और पोत-वाहकों का वर्चस्व था, जो अक्सर दक्षिण भारतीय द्रविड़ साम्राज्यों के व्यापारिक प्रवासियों का हिस्सा थे। मलाक्का जलडमरूमध्य और क्रा थलसंधि (Kra isthmus) अत्यंत महत्त्वपूर्ण वाणिज्यिक केंद्र थे, जो इंडोनेशियाई द्वीपसमूह या उत्तर में चीन के प्रमुख बंदरगाह कैंटन (गुआंगझू) की ओर माल के प्रवाह को सुगम बनाते थे। 15वीं शताब्दी तक ये परस्पर जुड़े क्षेत्र एक वैश्विक व्यापारिक क्षेत्र के रूप में विकसित हो गए, जिसने एशियाई, अफ्रीकी और यूरोपीय व्यापारियों को एकीकृत किया। इस वाणिज्य के लिए परिष्कृत संस्थागत संरचनाओं की आवश्यकता थी, जो अक्सर व्यापारिक प्रवासियों, विदेशी प्रवासियों के रूप में बसे व्यापारी विशेषज्ञों और जटिल संविदात्मक व्यवस्थाओं पर निर्भर थी (जैसा कि दूसरी शताब्दी ईस्वी के मुज़िरिस पपायरस से स्पष्ट होता है)।

भारतीयकरण और सामाजिक विकास (Indianization and Societal Development)

"भारतीयकरण" की अवधारणा दक्षिण-पूर्व एशिया पर भारत द्वारा डाले गए गहरे साँस्कृतिक प्रभाव को संदर्भित करती है। यह प्रभाव इतना व्यापक था कि कुछ इतिहासकारों ने इस क्षेत्र को (विशेष रूप से चौथी और पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के अपने चरमोत्कर्ष के दौरान) "वृहत्तर भारत" (Greater India) की संज्ञा दी। यह प्रक्रिया इस क्षेत्र के सामाजिक विकास, विशेष रूप से सुमात्रा, जावा और मुख्य भूमि की नदी घाटियों में राजनीतिक एवं साँस्कृतिक जीवन के मूलभूत पहलुओं को आकार देने में सहायक सिद्ध हुई।

निर्णायक रूप से, भारतीय प्रभाव के कारण दक्षिण-पूर्व एशिया में नौकरशाही राज्यों का उदय हुआ, जो प्रायः प्रायद्वीपीय भारत के प्रशासनिक ढाँचों पर आधारित थे। इस व्यापक साँस्कृतिक हस्तांतरण का मुख्य माध्यम बड़े पैमाने पर सैन्य विजय या बड़े पैमाने पर प्रवासन के बजाय प्रमुख वाणिज्यिक संपर्कों पर स्थापित भारतीय बस्तियों के व्यापारिक प्रवासी (trade diasporas) थे। इन व्यापारिक प्रवासियों में मुख्य रूप से भारतीय व्यापारी और बसने वाले लोग शामिल थे, जिन्होंने अंतर-साँस्कृतिक मध्यस्थों के रूप में भारतीय लौकिक संस्कृति और धार्मिक मान्यताओं के विविध पहलुओं को वहाँ पहुँचाया।

इस काल के संस्कृत अभिलेखों जैसे पुरालेखीय साक्ष्य इस रूपांतरण की प्रगति को दर्शाते हैं, जो स्थानीय शासकों की एक ऐसी शृंखला की ओर संकेत करते हैं जिनके नाम और उपाधियाँ पीढ़ियों के साथ उत्तरोत्तर भारतीयकृत होते चले गए। भारतीय व्यापारिक प्रवासियों में अक्सर ब्राह्मण आप्रवासी शामिल होते थे जो प्रायः व्यापारी उद्यमी भी थे। उनकी यह दोहरी भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी– वे व्यापारिक वस्तुओं के साथ-साथ पुरोहितीय कार्य भी प्रदान करते थे, जिनकी स्थानीय अभिजात वर्ग द्वारा अत्यधिक माँग की जाती थी। इनमें से कई ब्राह्मणों ने स्थानीय महिलाओं से विवाह किया और कालांतर में स्थानीय ब्राह्मण परिवारों की नींव रखी।

इन नए नौकरशाही राज्यों की स्थापना और उससे जुड़े साँस्कृतिक परिवेश यह रेखांकित करते हैं कि कैसे व्यापारिक नेटवर्क साँस्कृतिक रूपांतरण तथा विचारों व सामाजिक संरचनाओं के प्रसार के शक्तिशाली इंजन बने। यह प्रक्रिया यह दर्शाती है कि दक्षिण-पूर्व एशिया का साँस्कृतिक रूपांतरण स्थानीय संस्कृतियों को पूरी तरह बदलने के बजाय बाहर से आए प्रभावों को स्थानीय शासकों और समाजों द्वारा चयनात्मक रूप से अपनाने और रूपांतरित करने पर आधारित था।

धार्मिक प्रभुत्व एवं संचरण (Religious Dominance and Transmission)

दक्षिण-पूर्व एशिया में समुद्री और स्थलीय नेटवर्क्स के माध्यम से धार्मिक परंपराओं का संचरण एक ऐसे ऐतिहासिक पैटर्न को दर्शाता है जहाँ व्यापारिक प्रवासियों ने प्राथमिक मध्यस्थ के रूप में कार्य किया, जिससे भारतीय और बाद में इस्लामिक मतों के धार्मिक प्रभुत्व के उत्तरवर्ती चरण उत्पन्न हुए।

व्यापारिक प्रवासियों के माध्यम से धार्मिक प्रसार की गतिशीलता : व्यापारिक प्रवासियों के माध्यम से धार्मिक प्रसार की गतिशीलता उस प्रक्रिया का वर्णन करती है जिसके द्वारा वाणिज्यिक नेटवर्क और उन्हें बनाए रखने वाले समुदाय पूरे यूरेशिया में धार्मिक मतों के लंबी दूरी के संचरण और स्थापना के प्राथमिक वाहक बने। यह मॉडल यह प्रतिपादित करता है कि धर्म प्रायः समाज में व्यापक रूप से फैलने से पहले सबसे पहले एक स्थानीय व्यापारिक वर्ग तक पहुँचता था।

व्यापारिक प्रवासी, जो मेजबान समुदायों में विदेशी के रूप में रहने वाले विशेष व्यापारियों से बने थे, अंतर-साँस्कृतिक दलालों के रूप में कार्य करते थे। वे न केवल आर्थिक लेन-देन बल्कि लोगों, विचारों और धार्मिक मान्यताओं के आवागमन को भी सुगम बनाते थे। ये प्रवासी साझा धर्म, भाषा या नातेदारी पर बनी एकजुटता से बंधे थे। वाणिज्य और धर्म के बीच यह अन्योन्याश्रित संबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण था–

- **भौतिक समर्थन और पुण्य :** व्यापार से उत्पन्न धन ने दानों के माध्यम से धार्मिक संस्थाओं के लिए आवश्यक भौतिक समर्थन प्रदान किया। बौद्ध धर्म जैसी परंपराओं के लिए व्यापार की गतिशीलता इसके विस्तार से गहराई से जुड़ी थी; धन ने मठों के निर्माण और अभियानों के वित्तपोषण की अनुमति दी। इन भौतिक उपहारों (दान) के बदले में, दाताओं को आध्यात्मिक सहायता या धार्मिक पुण्य प्राप्त होता था। इसने व्यापारियों को धन संचय करने का एक मजबूत संरचनात्मक प्रोत्साहन दिया और धार्मिक समुदाय (संघ) को सीधे वाणिज्यिक नेटवर्क्स से जोड़ दिया।
- **वाहकों की गतिशीलता :** व्यापारिक मार्गों (मुख्य धमनियों, छोटी सहायक नदियों और समुद्री कड़ियों सहित) ने प्रचारकों, भिक्षुओं और तीर्थयात्रियों को यात्रा करने के लिए आवश्यक पथ और सुरक्षा प्रदान की।
- **धार्मिक मध्यस्थ :** दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्राह्मण आप्रवासी अपनी वाणिज्यिक गतिविधियों के साथ-साथ पुरोहित की भूमिका भी निभाते थे। बाद में, मलय, इंडोनेशिया और दक्षिणी फिलीपींस का इस्लाम में धर्मांतरण भी इसी प्रकार एक मुस्लिम व्यापारिक प्रवासी के आगमन से हुआ।

धार्मिक प्रभुत्व के चरण : दक्षिण-पूर्व एशिया में धार्मिक प्रभुत्व और संचरण को क्रमिक चरणों में विभाजित किया जा सकता है–

- **चरण 1: हिंदू धर्म (प्रारंभिक स्थापना):** दक्षिण-पूर्व एशिया पर भारत का प्रभाव चौथी और पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के आसपास अपने शिखर पर था। इस काल की विशेषता सुमात्रा, जावा और मुख्य भूमि की नदी घाटियों में नौकरशाही राज्यों का उदय था, जिन्होंने भारत के राजनीतिक मॉडलों को अपनाया। इस प्रक्रिया के तहत शासक वर्ग ने बड़े पैमाने पर हिंदू धर्म को अपनाया। यद्यपि अभिजात वर्ग के बीच इसे व्यापक स्वीकृति मिली, किंतु इस क्षेत्र में हिंदू धर्म का दीर्घकालिक प्रभुत्व सीमित रहा और यह मुख्य रूप से बाली द्वीप तथा कुछ छोटे केंद्रों तक ही सीमित रह गया।
- **चरण 2 : बौद्ध धर्म (व्यापक प्रसार):** बौद्ध धर्म व्यापारिक मार्गों के साथ विस्तारित होकर दक्षिण-पूर्व एशिया के कई हिस्सों में एक dominant शक्ति बन गया। हीनयान/थेरवाद बौद्ध धर्म मुख्यतः श्रीलंका से फैलकर बर्मा, थाईलैंड और वियतनाम में प्रचलित धर्म बन गया। कंबुज (कंबोडिया) से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य दर्शाते हैं कि 5वीं शताब्दी ईस्वी के अंत से बौद्ध धर्म फला-फूला। राजा जयवर्मा VII (1181–1220 ईस्वी)

जैसे धर्मनिष्ठ बौद्ध शासकों ने भिक्षुओं के लिए 'सौगताश्रम' जैसी संस्थाओं की स्थापना की। मलय प्रायद्वीप और जावा में चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के संस्कृत अभिलेख बौद्ध धर्म की उपस्थिति को सिद्ध करते हैं, जहाँ छठी शताब्दी तक महायान बौद्ध धर्म फला-फूला। सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के बीच सुमात्रा का **श्रीविजय साम्राज्य** बौद्ध शिक्षा का एक महान केंद्र बन गया।

- **चरण 3: इस्लाम (उत्तरवर्ती समुद्री धर्मांतरण):** दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ समुद्री क्षेत्रों का इस्लाम में धर्मांतरण धार्मिक संचरण के एक उत्तरवर्ती चरण का प्रतिनिधित्व करता है जो वाणिज्यिक गतिविधियों द्वारा संचालित था। मलाया, इंडोनेशिया और दक्षिणी फिलीपींस का धार्मिक परिवर्तन मुख्य रूप से मुस्लिम व्यापारिक प्रवासियों के माध्यम से हुआ। यह पैटर्न–जहाँ इस्लाम पहले स्थानीय व्यापारिक वर्ग में और फिर धीरे-धीरे व्यापक समाज में फैलता है–ऐतिहासिक रूप से देखा जा सकता है। अब्बासिद खिलाफत के उत्कर्ष और मुस्लिम जगत की बढ़ती शक्ति ने लगभग 750 से 1500 ईस्वी तक इस्लाम को अंतर-महाद्वीपीय संपर्कों का मुख्य माध्यम बना दिया।

1.6 सारांश (Summary)

संक्षेप में, जहाँ तिब्बत ने भारत के साथ बाद में संबंध स्थापित किए और मुख्य रूप से कठिन स्थलीय मार्गों के माध्यम से धार्मिक एवं साहित्यिक ज्ञान प्राप्त किया, वहीं दक्षिण-पूर्व एशिया दीर्घकालिक एवं शक्तिशाली समुद्री व्यापारिक नेटवर्क्स के माध्यम से भारत के वाणिज्यिक एवं साँस्कृतिक ताने-बाने में गहराई से रचा-बसा हुआ था, जिससे वहाँ व्यापक साँस्कृतिक और धार्मिक रूपांतरण संभव हुआ।

1.7 सहायक सामग्री (Suggested Readings)

- Radha Madhav Bharadwaj, 'Tibet' in Sarao, KTS and Long, Jeffrey D. (eds), *Buddhism and Jainism, - Encyclopaedia of Indian Religions*, vol.1, Springer, The Netherlands, pp. 1252-1260 (e Book ISBN-978-94-024-0852-2; ISBN-978-94-024-0853-9 Print and electronic bundle).
- Xinru Liu, *The Silk Road in World History* (The New Oxford World History), OUP 2010.
- Tarling, N., ed. (2000). *The Cambridge History of Southeast Asia* (vol. 1, part 1: from earliest times to 1500 CE), Cambridge: Cambridge University Press. (A basic text book for the course).
- Wolters, O.W. (1999). History, *Culture and Region in Southeast Asian Perspectives*, Singapore: Institute of Southeast Asian Studies

- Miksic, John N. and Geok Yian Goh. (2017). *Ancient Southeast Asia*, London: Routledge
- Kenneth R. Hall, (2011). *A History of Early Southeast Asia: Maritime Trade and Societal Development*, 100-1500, London: Rowman & Littlefield Publishers
- Kulke, H. (1993; 2001). *Kings and Cults: State Formation and Legitimation in India and Southeast Asia*, New Delhi: Manohar.

भारत और विश्व के बीच व्यापारिक नेटवर्क : समुद्री एवं थल मार्ग

(Trade Networks between India and the World: Maritime and Land Routes)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को निम्नलिखित से परिचित कराना था–

1. **क्षेत्रीय व अंतर्महाद्वीपीय नेटवर्क का मानचित्रण :** अंतर-क्षेत्रीय तथा यूरेशियाई व्यापारिक मार्गों के भौगोलिक विस्तार का विश्लेषण और मानचित्रण करना।
2. **साक्ष्यों एवं व्यापारिक वस्तुओं का मूल्यांकन :** लंबी दूरी के व्यापार तथा विनिमय की वस्तुओं के पुनर्गठन के लिए पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों का समालोचनात्मक परीक्षण करना।
3. **वाणिज्य व धर्म का अंतर्संबंध :** व्यापारिक नेटवर्क्स तथा साँस्कृतिक व धार्मिक संचरण के बीच के अनिवार्य और सहजीवी संबंधों को समझना।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह इकाई उन व्यापारिक नेटवर्क्स का गहन अनुशीलन करती है जिन्होंने प्राचीन भारत को थल और जल दोनों माध्यमों से ग्रीको-रोमन जगत, मध्य एवं पूर्व एशिया तथा तिब्बत से मजबूती से जोड़ा। इसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को कालान्तर में विकसित हुई इन व्यापारिक कड़ियों की जटिलताओं से परिचित कराना और अंतर-साँस्कृतिक आवागमन की आधारभूत संरचनाओं का विश्लेषण करना है।

नगरीय जीवन के उदय के बाद इस लंबी दूरी के व्यापार को बनाए रखने वाली सबसे प्रमुख संस्थागत संरचना **'व्यापारिक समुदाय' (Trade Diaspora)** थी। इसे ऐसे वाणिज्यिक समुदायों के परस्पर संबद्ध नेटवर्क के रूप में परिभाषित किया जाता है, जहाँ विशिष्ट व्यापारी विदेशी शहरों में 'अपरिचितों' के रूप में निवास करते थे। ये व्यापारी अंतर-साँस्कृतिक दलालों के रूप में कार्य करते थे और अपनी मूल संस्कृति, भाषा या धर्म से जुड़ी साझी एकजुटता से बंधे होते थे। इसके माध्यम से न केवल भौतिक वस्तुओं का आदान-प्रदान संभव हुआ, बल्कि सुदूर क्षेत्रों तक विचारों, धार्मिक मान्यताओं और तकनीकों का संचरण भी सुगम हुआ।

चीन से शुरू होकर मध्य एशिया और ईरान के रास्ते भूमध्य सागर के पूर्वी तटों तक जाने वाली थल रेखाएँ–जिन्हें सामूहिक रूप से **'रेशम मार्ग' (Silk Routes)** कहा जाता है–अंतर्महाद्वीपीय व्यापार की मुख्य धमनियाँ बनीं। यह दुर्गम प्रणाली एक सहस्त्राब्दी से अधिक समय तक सक्रिय रही, जिसने राजनीतिक उथल-पुथल के दौर में भी वाणिज्यिक निरंतरता को बनाए रखा। रोमन साम्राज्य का पूर्वी व्यापार केवल उसकी सीमाओं तक सीमित नहीं था; पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि रोमन धातु के पात्र, काँच की वस्तुएँ और सिक्के साम्राज्य की औपचारिक सीमाओं (जैसे 'फ्री जर्मनी') के पार तक प्रवाहित होते थे। इस थल व्यापार में पार्थियनों जैसे राजनीतिक मध्यस्थों की भूमिका अत्यंत निर्णायक थी, जिन्होंने अपनी सीमाओं पर नियंत्रण रखकर रोम और चीन के बीच सीधे संपर्कों को रोके रखा ताकि रेशम व्यापार के मुनाफे पर उनका एकाधिकार बना रहे।

इसके समानांतर, हिंद महासागर के समुद्री मार्गों ने व्यापारिक आवागमन की दूसरी प्रमुख धुरी प्रस्तुत की, जो मुख्य रूप से फारस/अरब की खाड़ी और लाल सागर के दो जलमार्गों पर निर्भर थी। 30 ईसा पूर्व में मिस्र पर रोमन अधिकार के बाद, लाल सागर रोमन साम्राज्य में प्रवेश करने वाली पूर्वी वस्तुओं का मुख्य मार्ग बन गया, जिसकी सफलता में मानसूनी हवाओं के व्यवस्थित ज्ञान की केंद्रीय भूमिका रही। 'पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई' जैसे ग्रंथ मिस्र के मायोस हॉर्मोस और बेरेनिके जैसे बंदरगाहों तथा भारत के मुज़िरिस और बारिगाज़ा (भड़ौच) जैसे व्यापारिक केंद्रों का सजीव विवरण प्रस्तुत करते हैं, जो समुद्री मार्गों को उत्तर भारत और मध्य एशिया के थल मार्गों से जोड़ते थे। इस व्यापारिक गतिशीलता के परिणामस्वरूप दक्षिण भारत में रोमन मुद्राओं का भारी आगमन हुआ और काली मिर्च व मसालों का निरंतर निर्यात बना रहा।

ये वाणिज्यिक नेटवर्क धार्मिक परंपराओं, विशेष रूप से बौद्ध धर्म के प्रसार से भी अनिवार्य रूप से जुड़े हुए थे। बौद्ध संघ को समृद्ध व्यापारियों और संरक्षकों से मिलने वाले भौतिक दानों (दान) से प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त हुआ। इस सहजीवी संबंध ने व्यापारिक मार्गों और व्यापारिक केंद्रों (जैसे पश्चिमी घाट के बौद्ध गुफा विहारों या उत्तरापथ) के निकट बौद्ध मठों और स्तूपों की स्थापना को प्रोत्साहन दिया। "बहुजन हिताय" धर्मोपदेश हेतु यात्रा करने के बुद्ध के निर्देश का पालन करते हुए बौद्ध भिक्षुओं ने उन्हीं मार्गों और सहायक कड़ियों का उपयोग किया जिनका प्रयोग व्यापारी करते थे, जो यह दर्शाता है कि प्राचीन यूरेशियाई नेटवर्क में आर्थिक और धार्मिक उद्देश्य किस प्रकार एक-दूसरे से गुंथे हुए थे।

2.2 वैचारिक ढाँचा एवं संस्थागत संरचनाएँ (Conceptual Framework and Institutional Structures)

भारत और शेष विश्व के बीच होने वाले जटिल अंतर-क्षेत्रीय वाणिज्य को समझने के लिए अंतर-साँस्कृतिक व्यापार और उसकी मौलिक संस्थागत संरचना–'व्यापारिक समुदाय' (Trade Diaspora)—का विश्लेषण अनिवार्य है, जो व्यापार को केवल लाभ कमाने की क्रिया न मानकर व्यापक सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संदर्भों से जोड़कर देखता है।

2.2.1 व्यापारिक समुदाय मुख्य संस्थागत संरचना के रूप में (The Trade Diaspora as the Core Institutional Structure)

विशेष रूप से नगरीय समाजों के उदय के बाद, अंतर-साँस्कृतिक व्यापार को प्रबंधित करने की सबसे सामान्य संस्थागत व्यवस्था 'व्यापारिक समुदाय' थी। इस तंत्र के अंतर्गत वाणिज्यिक विशेषज्ञ अपने गृह समाजों से शारीरिक रूप से पृथक होकर विदेशी रणनीतिक नगरों में प्रवासियों के रूप में बसते थे। इन बिखरी हुई बस्तियों का नेटवर्क एक अंतर-संबद्ध वाणिज्यिक ताना-बाना बनाता था, जो अक्सर किसी औपचारिक प्रशासनिक नियंत्रण के बजाय साझी भाषा, धर्म या नातेदारी की एकजुटता पर टिका होता था।

इन प्रवासी व्यापारियों का प्राथमिक कार्य अंतर-साँस्कृतिक दलालों (cross-cultural brokers) के रूप में मध्यस्थता करना था, जो स्थानीय मेजबान समाज और अपने मूल क्षेत्र से आने वाले यात्रारत व्यापारियों के बीच वाणिज्य को सुलभ बनाते थे। इस मध्यस्थता की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि भिन्न जीवन-शैलियों वाले लोगों को अक्सर 'अपरिचित' या संभावित रूप से खतरनाक माना जाता था, जिससे दोनों पक्षों की सुरक्षा हेतु विशेष संस्थागत प्रबंधों की आवश्यकता होती थी। ऐतिहासिक रूप से, इन व्यापारिक प्रवासियों और स्थानीय समाजों के संबंध अलग-अलग रहे हैं; कभी उन्हें स्थानीय सत्ता द्वारा शोषण के पात्र के रूप में देखा गया, तो कभी उन्होंने तटस्थता और अहिंसा की नीतियाँ अपनाकर स्वायत्त व स्वशासी बस्तियों के रूप में अपनी पहचान बनाई।

2.2.2 विनिमय एवं नेटवर्क के सैद्धांतिक मॉडल (Theoretical Models for Exchange and Networks)

प्राचीन काल में वस्तुओं और विचारों के प्रवाह को समझने के लिए विभिन्न आर्थिक मॉडलों का सहारा लिया जाता है–

1. **विनिमय प्रणालियाँ (Substantivist vs. Formalist) :** कार्ल पोलानी और 'सब्सटेंटिविस्ट' (Substantivist) संप्रदाय ने तर्क दिया कि पूर्व-आधुनिक समाजों में आर्थिक गतिविधियाँ गैर-आर्थिक सामाजिक संस्थाओं के भीतर 'अंतर्निहित' (embedded) थीं। उन्होंने गैर-बाजार विनिमय के तीन प्रकार बताए: पारस्परिक उपहार-प्रदान (reciprocity), पुनर्वितरण (redistribution), तथा बाजार विनिमय (market exchange)। हालाँकि, बौद्ध संदर्भों से प्राप्त साहित्यिक, अभिलेखीय और पुरातात्विक साक्ष्य यह दर्शाते हैं कि प्राचीन दक्षिण एशिया में ये तीनों प्रणालियाँ एक साथ सक्रिय थीं।

2. **नेटवर्क दृष्टिकोण (Networks Approach) :** यह दृष्टिकोण आर्थिक और धार्मिक गतिशीलता को एक जीवंत प्रक्रिया मानता है, जहाँ भौतिक और साँस्कृतिक वस्तुएँ विभिन्न शक्ति केंद्रों ('नोड्स') को जोड़ने वाली धमनियों ('कंड्यूट्स') के माध्यम से प्रवाहित होती हैं। इसमें धार्मिक (विशेष रूप से बौद्ध) नेटवर्क व्यापारिक नेटवर्क्स के साथ परस्पर जुड़े हुए थे, जहाँ शासक, व्यापारी और धार्मिक विशेषज्ञ स्वयं अपने संपर्कों का निर्माण करते थे।

2.2.3 धर्म और वाणिज्य का सहजीवन: धर्म-आधारित अर्थव्यवस्था (The Symbiosis of Religion and Commerce / The Religious Economy)

वैचारिक ढाँचे का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू धार्मिक और आर्थिक क्षेत्रों का अंतर्संबंध है, जिसे 'धर्म-आधारित अर्थव्यवस्था' कहा जाता है—

- **बौद्ध धर्म को संरक्षण :** बौद्ध संघ की संवृद्धि व्यापार से उत्पन्न अधिशेष संसाधनों पर सीधी निर्भर थी। धनिकों और व्यापारियों ने मठों को भौतिक दान (दान) देकर महत्त्वपूर्ण संरक्षक की भूमिका निभाई, जिसके बदले में उन्हें आध्यात्मिक पुण्य प्राप्त होता था। इस व्यवस्था ने भौतिक संपदा के दान को पारलौकिक लाभ से जोड़ दिया। बौद्ध साहित्य में भी बुद्ध को 'सार्थवाह' (कारवां-नेता) जैसी वाणिज्यिक उपाधियाँ दी गईं और जातक कथाओं में व्यापारियों को प्रमुख पात्र बनाया गया।

- **गतिशीलता का अंतर्संबंध :** बौद्ध भिक्षुओं और प्रचारकों की यात्राएँ व्यापारिक मार्गों पर निर्भर थीं; वे प्रायः उन्हीं मुख्य धमनियों और छोटी गलियों से गुजरते थे जिनका उपयोग व्यापारी करते थे, जिससे वाणिज्यिक वस्तुओं के साथ-साथ विचारों और धार्मिक प्रथाओं का आदान-प्रदान संभव हुआ।

2.3 स्थल मार्ग : यूरेशियाई एवं उपमहाद्वीपीय नेटवर्क (Land Routes: Trans-Eurasian and Subcontinental Networks)

भारत को यूरेशिया और अफ्रीका से जोड़ने वाले विशाल थल वाणिज्यिक नेटवर्क्स ने वस्तुओं, विचारों और जन-सामान्य के निरंतर आवागमन को सुचारू बनाया, जिसने यूरेशियाई और उपमहाद्वीपीय व्यापारिक ताने-बाने को आधार प्रदान किया।

2.3.1 यूरेशियाई अक्ष : रेशम मार्ग (The Trans-Eurasian Axis: The Silk Routes)

रेशम मार्ग उत्तर-वर्ती काल में दिया गया एक ऐसा नाम है जो मध्य एशिया और ईरान के रास्ते चीन को पूर्वी भूमध्य सागरीय तटों से जोड़ने वाली वाणिज्यिक धमनियों और सहायक नलिकाओं की अंतर्महाद्वीपीय प्रणाली को निरूपित करता है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से प्रारंभ होकर एक सहस्त्राब्दी से भी अधिक समय तक चलने वाले इस व्यापार ने पृथ्वी के अत्यंत निर्जन और दुर्गम भूभागों को पार किया। लगभग 90 से 130 ईस्वी के अपने चरमोत्कर्ष काल के दौरान, उत्तरी चीन से रोम तक का यह पूरा मार्ग केवल चार शक्तिशाली राज्यों—चीन, कुषाण साम्राज्य, पार्थिया और रोमन साम्राज्य—से होकर गुजरता था।

पश्चिम की ओर होने वाले माल के प्रवाह में मुख्य बल रेशम जैसी मूल्यवान वस्तुओं पर था, यद्यपि इसके साथ कई अन्य उत्पादों का भी विनिमय होता था। इसके बदले में, चीनी व्यापारी मुख्य रूप से रोमन सोने और चाँदी के सिक्कों के साथ-साथ कीमती पत्थरों, मूँगा, अंबर (कहरवा) और काँच जैसी कम वजन तथा उच्च मूल्य वाली वस्तुओं की माँग करते थे। पार्थिया में स्थित मर्व (मार्गीयाना का एंटीओचिया) का पारगमन केंद्र चीनी व्यापारियों के लिए पारंपरिक पश्चिमी सीमा रेखा के रूप में कार्य करता था। पार्थियन साम्राज्य (अंशी) ने इस पारगमन व्यापार पर नियंत्रण रखकर तथा पूर्वी उत्पादों की बिक्री पर अपना एकाधिकार बनाए रखकर एक शक्तिशाली मध्यस्थ की भूमिका निभाई। पार्थियनों ने रोम और चीन के बीच सीधे राजनयिक व व्यापारिक संपर्कों को योजनाबद्ध तरीके से रोका तथा चीनी दूतों को यात्रा की कठिनाइयों के बारे में भ्रमित किया ताकि रेशम व्यापार का मुनाफा उन्हीं के पास बना रहे। उनकी वाणिज्यिक कूटनीति में भारी चीनी रेशम को खरीदकर सीरियाई नगरों में हल्के जालीदार वस्त्रों के रूप में पुनः बुनना और फिर इसे "रोमन निर्माण" बताकर पुनः चीनियों को बेचना शामिल था ताकि अधिकतम लाभ कमाया जा सके।

2.3.2 उपमहाद्वीपीय नेटवर्क : भारत का उत्तरापथ और दक्षिणापथ (Subcontinental Networks: India's Uttarāpatha and Dakṣiṇāpatha)

भारतीय उपमहाद्वीप के भीतर दो प्रमुख धमनी नेटवर्क्स ने अंतर-क्षेत्रीय व्यापार और साँस्कृतिक संचरण को सुगम बनाया। उत्तरापथ (उत्तरी मार्ग) वाणिज्यिक और साँस्कृतिक विनिमय का मुख्य अक्ष था, जो उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्रों (बैक्ट्रिया और मध्य एशिया सहित) से उत्तर-पूर्वी भारत के गंगा-यमुना दोआब तक विस्तृत था। यह नेटवर्क कई बदलते रास्तों से मिलकर बना था जो प्रमुख व्यापारिक केंद्रों को जोड़ते थे। मथुरा एक महत्त्वपूर्ण चौराहा था जो उत्तरापथ के पूर्व-पश्चिम मार्गों को दक्षिणापथ के उत्तर-दक्षिण मार्गों से जोड़ता था। उत्तरी पंजाब में तक्षशिला का महानगर एक रणनीतिक केंद्र था, जो गांधार, मध्य एशिया, कश्मीर और उत्तरी भारत के मार्गों को जोड़ते हुए एक व्यावसायिक केंद्र के रूप में कार्य करता था। उत्तरी काले पॉलिशदार मृद्भांड (NBPW) तथा बदख्शाँ से प्राप्त लाजवर्द जैसे बाहरी साक्ष्य इस मार्ग पर वस्तुओं के निरंतर परिवहन की पुष्टि करते हैं। प्लिनी द एल्डर और स्ट्रैबो जैसे शास्त्रीय भूगोलवेत्ताओं ने भी पुष्कलावती से पाटलिपुत्र के बीच मुख्य मार्ग के पड़ावों का विवरण प्रस्तुत किया है।

दक्षिणापथ (दक्षिणी मार्ग) इसका समकालीन दक्षिणी समकक्ष था, जो गंगा-यमुना घाटी को दक्कन के पठार और पश्चिमी तट से जोड़ता था। इस नेटवर्क ने दक्कन से उत्तर की ओर लोहे, ताँबे और बहुमूल्य पत्थरों जैसी कच्ची सामग्रियों के परिवहन को सुगम बनाया तथा हिंद महासागर के समुद्री बंदरगाहों तक पहुँच प्रदान की। अवंती की राजधानी उज्जैनी दक्षिणापथ का एक प्रमुख केंद्र थी, जो उत्तर-पश्चिम से भड़ौच (भारुकच्छ) बंदरगाह तक पहुँचाई जाने वाली जटामांसी (नार्ड) और कुष्ठ (कॉस्टस) जैसी वस्तुओं के लिए मध्यस्थ का कार्य करती थी। विशेष रूप से, दक्षिणापथ का प्रमाण पश्चिमी घाट (जैसे कार्ले, नासिक) में बौद्ध शैलकृत चैत्यों और विहारों के जमघट से मिलता है, जो समृद्ध व्यापारिक मार्गों पर वणिक संरक्षण और धार्मिक संचरण के बीच के गहरे अंतर्संबंध को स्पष्ट करता है।

2.3.3 साम्राज्यवादी सीमाओं से परे रोमन व्यापार (Roman Trade Beyond Imperial Frontiers)

रोमन साम्राज्य का प्रभाव उसकी औपचारिक राजनीतिक सीमाओं (लाइम्स) से परे थल मार्गों के माध्यम से यूरोप और अफ्रीका तक फैला हुआ था। "स्वतंत्र जर्मनी" (गैर-रोमन यूरोप) में रोमन वस्तुओं का आवागमन दान्यूब नदी जैसी प्राकृतिक धमनियों पर निर्भर था। एक मुख्य मार्ग "अंबर मार्ग" था, जो रोमन कार्नंटम से शुरू होकर उत्तर की ओर बाल्टिक सागर की ओर

जाता था। प्रथम दो शताब्दियों ईस्वी के दौरान इटली से आने वाले रोमन आयात इन क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में पहुँचे, जिनमें रोमन सिक्के (जो मुद्रा के रूप में प्रयुक्त होते थे), सोने-चाँदी के पात्र, काँस्य के बर्तन (जिनमें से 850 से अधिक बर्तन जुटलैंड और बाल्टिक द्वीपों में मिले हैं), काँच का सामान और टेरा सिगिलाटा मृद्भांड शामिल थे।

अफ्रीका में, रोमन संपर्क और व्यापार सहारा मरुस्थल तथा पूर्वी अफ्रीकी तट तक विस्तृत था। व्यापारिक मार्गों ने भूमध्य सागरीय तट (जैसे सबराथा और लेप्सिस मैग्ना) को दक्षिण में फेज़ान क्षेत्र से जोड़ा। गेर्मा समाधि-स्थल के निकट हुए पुरातात्विक उत्खनन में आयातित एम्फोरा, काँच की वस्तुएँ, दीपक और टेरा सिगिलाटा प्राप्त हुए हैं। पूर्वी अफ्रीकी तट पर नियमित बाह्य व्यापारिक संपर्क ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से शुरू हुआ, जिसने हाथीदाँत जैसी वस्तुओं को उत्तर की ओर व्यापक हिंद महासागर नेटवर्क में पहुँचाने में मदद की।

2.4 समुद्री मार्ग : हिंद महासागर एवं लाल सागर (Maritime Routes: The Indian Ocean and Red Sea)

हिंद महासागर और लाल सागर से होकर गुजरने वाले समुद्री मार्गों ने भूमध्य सागरीय दुनिया (विशेषकर रोमन साम्राज्य) को भारत तथा सुदूर पूर्व से जोड़ने वाले लंबी दूरी के व्यापार की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण धुरी का निर्माण किया। यह व्यापार मुख्य रूप से दो प्रमुख जलमार्गों पर निर्भर था– फारस/अरब की खाड़ी और लाल सागर।

2.4.1 लाल सागर और इंडो-रोमन व्यापार (The Red Sea and Roman-Indian Trade)

लाल सागर ने पूर्व से रोमन साम्राज्य में प्रवेश करने वाली वस्तुओं के मुख्य मार्ग के रूप में कार्य किया। इस मार्ग के महत्त्व में वृद्धि 30 ईसा पूर्व में सम्राट ऑगस्टस द्वारा मिस्र के विलय के साथ हुई, जिसके कारण पूर्वी व्यापार का व्यवस्थित व्यावसायिक दोहन संभव हुआ। मिस्र के लाल सागर तट पर स्थित मुख्य रोमन बंदरगाहों में मायोस हॉर्मोस (संभवतः कुसैर अल-कादिम) और बेरेनिके शामिल थे। ये बंदरगाह रेगिस्तानी कारवाँ मार्गों के माध्यम से नील नदी से और अंततः अलेक्जेंड्रिया से जुड़े हुए थे।

गहरे समुद्र में नौवहन का सफल विकास मानसूनी हवाओं के आवधिक एवं पूर्वानुमानित ज्ञान पर निर्भर था। यद्यपि स्थानीय नाविक इन हवाओं से पहले से परिचित थे, किंतु रोमन विवरणों में प्रथम शताब्दी ईस्वी के मध्य में हिप्पालस नामक ग्रीक नाविक को इनकी खोज या लोकप्रिय बनाने का श्रेय दिया गया। मानसूनी हवाओं के इस व्यवस्थित उपयोग ने लाल सागर और भारत के बीच सीधी तथा कम समय की यात्राओं को सुगम बनाया, जो तटीय मार्गों की तुलना

में एक बड़ा परिवर्तन था। हालाँकि, स्वयं लाल सागर में उत्तर की ओर चलने वाली हवाओं के कारण नौकायन में चुनौतियाँ आती थीं, जिसने बेरेनिके जैसे अधिक दक्षिणी बंदरगाहों के चयन को प्रभावित किया।

2.4.2 साक्ष्य, बंदरगाह एवं विनिमय की वस्तुएँ (Evidence, Ports, and Commodities)

प्रथम शताब्दी ईस्वी के समुद्री व्यापार का विवरण देने वाला मुख्य प्राथमिक स्रोत ग्रीक व्यापारी की मार्गदर्शिका **'पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई'** (PME) है। एक ग्रीक-मिस्री व्यापारी द्वारा लिखित यह पुस्तक लाल सागर से भारत तक के बंदरगाहों, मार्गों और व्यापारिक वस्तुओं का विस्तृत ब्योरा देती है।

भारतीय तट पर स्थित प्रमुख बंदरगाहों में शामिल थे:

1. **बारिगाज़ा (आधुनिक भड़ौच, गुजरात):** पेरिप्लस में उल्लिखित सबसे महत्त्वपूर्ण विदेशी बंदरगाह।
2. **मुज़िरिस (संभवतः मालाबार तट पर स्थित पट्टनम, केरल):** यह बारिगाज़ा क्षेत्र और ग्रीक जहाजों दोनों के साथ होने वाले व्यापार के कारण अपनी समृद्धि के लिए प्रसिद्ध था। मुज़िरिस पपायरस की खोज अलेक्जेंड्रिया और मुज़िरिस के बीच होने वाली समुद्री यात्रा के ऋण अनुबंध का साक्ष्य प्रदान करती है, जिसमें गंगीय नार्ड, हाथीदाँत और वस्त्रों जैसी उच्च-मूल्य वाली वस्तुओं के परिवहन का विवरण है।
3. **पोदुके (कोरोमंडल तट पर पांडिचेरी के निकट प्राचीन अरिकामेडु):** अरिकामेडु में हुए उत्खनन से रोमन अरेटाइन पात्र और एम्फोरा के टुकड़े प्राप्त हुए हैं, जो निरंतर व्यापारिक संपर्क की पुष्टि करते हैं।

वस्तुओं का यह प्रवाह रोमन साम्राज्य में काली मिर्च (जिसे कभी-कभी यवनप्रिय कहा जाता था), मसालों, रत्नों और रेशम की अत्यधिक माँग द्वारा संचालित होता था। इसके बदले में, बड़ी मात्रा में रोमन सोने और चाँदी के सिक्के आयात किए जाते थे, जिसके कारण प्लिनी द एल्डर जैसे रोमन लेखकों ने साम्राज्य से धन के निष्कासन पर चिंता व्यक्त की थी। दक्षिण भारत में पाए गए रोमन सिक्कों के ढेर इस बात का समर्थन करते हैं कि इनका उपयोग मुद्रा के बजाय मुख्य रूप से धातु-पिंड (बुलियन) के रूप में होता था।

2.4.3 वैकल्पिक समुद्री मार्ग एवं उत्तरवर्ती विकास (Alternative Maritime Routes and Later Developments)

यद्यपि प्रारंभिक रोमन काल के दौरान लाल सागर मार्ग अत्यंत महत्त्वपूर्ण था, किंतु फारस/अरब की खाड़ी ने भी प्राच्य व्यापार के लिए एक प्रमुख जलमार्ग के रूप में कार्य किया। खाड़ी के माध्यम से होने वाला व्यापार मुख्य रूप से अरब-फारसी व्यापारियों द्वारा संचालित होता था, और वस्तुएँ अक्सर पाल्मायरा जैसे मध्यस्थों के माध्यम से रोमन क्षेत्रों तक पहुँचती थीं (जैसा कि एड-दुर जैसे स्थलों से स्पष्ट होता है)।

उत्तरवर्ती काल में, श्रीलंका (ताम्रापर्णी/तप्रोबेन) द्वीप एक रणनीतिक व्यापारिक केंद्र के रूप में उभरा, विशेष रूप से उत्तर-रोमन/बायज़ेंटाइन काल (चौथी से सातवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य) के दौरान, जो भारतीय उपमहाद्वीप, भूमध्य सागर, फारस और चीन को जोड़ता था। इस उत्तरवर्ती चरण में वस्तुओं का प्रवाह निरंतर बना रहा और अक्सुमाइट्स जैसे मध्यस्थों की सहायता से पश्चिम के साथ व्यापार के लिए लाल सागर मार्ग फारस की खाड़ी पर हावी रहा। इस्लाम के उदय के समय तक, पश्चिमी हिंद महासागर में वाणिज्य का स्वरूप बदल गया, जहाँ मुस्लिम व्यापारिक प्रवासियों ने मानसूनी हवाओं का उपयोग करके चीन तक के समुद्री मार्गों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया।

2.5 अंतर-साँस्कृतिक विनिमय और धार्मिक संचरण (Cross-Cultural Exchange and Religious Transmission)

अंतर-साँस्कृतिक विनिमय और धार्मिक संचरण का क्षेत्र लंबी दूरी के व्यापारिक नेटवर्क्स और प्रमुख धार्मिक परंपराओं के वैश्विक प्रसार के बीच के अनिवार्य अंतर्संबंधों को रेखांकित करता है। यह प्रक्रिया भाषा, साहित्य और कला के विविध रूपों जैसी साँस्कृतिक बहुलता में गहराई से प्रतिबिंबित होती है।

2.5.1 सहजीवी धार्मिक अर्थव्यवस्था और पुण्य (The Symbiotic Religious Economy and Merit)

इस संचरण को गति देने वाली मुख्य कार्यप्रणाली धार्मिक संस्थाओं और वाणिज्यिक समूहों के बीच का सहजीवी संरचनात्मक विनिमय था, जिसे प्रायः 'धार्मिक अर्थव्यवस्था' (religious economy) कहा जाता है। बौद्ध धर्म जैसी परंपराओं के लिए व्यापार की गतिशीलता उसके प्रसार से अपरिहार्य रूप से जुड़ी हुई थी, क्योंकि व्यापार द्वारा उत्पन्न संपदा ने भौतिक दान के माध्यम से धर्म को आधार प्रदान किया। इस प्रकार बौद्ध संघ की संवृद्धि संरक्षकों द्वारा

प्रदान किए गए अधिशेष संसाधनों से सीधे तौर पर संचालित होती थी। इन भौतिक उपहारों (दान) के बदले में दाताओं (जो प्रायः समृद्ध व्यापारी होते थे) को आध्यात्मिक सहायता या धार्मिक पुण्य प्राप्त होता था। दान की इस उदार प्रक्रिया ने एक ओर जहाँ भौतिक संपदा के परित्याग को प्रोत्साहित किया, वहीं दूसरी ओर अधिक पुण्य प्राप्त करने की आकांक्षा के कारण धन संचय करने के लिए एक आर्थिक उत्प्रेरक का भी काम किया। इस पुण्य को परिजनों और "समस्त प्राणियों" में स्थानांतरित किया जा सकता था। बौद्ध साहित्यिक परंपराओं ने इस अंतर्संबंध को सक्रिय रूप से बढ़ावा दिया, जिसमें बुद्ध को 'सार्थवाह' (कारवां-नेता) जैसी व्यावसायिक उपाधियों से अलंकृत किया गया और जातक आख्यानों में व्यापारियों को प्रमुख पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया। यह दृष्टिकोण रोमन, ईसाई और हिंदू परंपराओं के सर्वथा विपरीत था, जहाँ व्यापारियों को अक्सर हीन दृष्टि से देखा जाता था। इसके अतिरिक्त, 'सप्तरत्न' के रूप में विख्यात बहुमूल्य वस्तुएँ–जिनमें सोना, चाँदी, स्फटिक, वैडूर्य, मूँगा और मोती शामिल थे–अत्यधिक प्रतीकात्मक महत्त्व रखती थीं और बौद्ध धातु-मंजूषाओं (धातु-गर्भों) में प्रचुरता से पाई जाती थीं, जो व्यापारिक मूल्य और धार्मिक अर्थ के परस्पर विलय को दर्शाती हैं।

2.5.2 गतिशीलता और संचरण के मॉडल (Models of Mobility and Transmission)

धार्मिक प्रचारकों की गतिशीलता को बुद्ध के इस धर्मोपदेश से प्रामाणिक स्वीकृति मिली थी कि वे "बहुजन हिताय" "धम्म का उपदेश देने के लिए पथ पर विचरण करें।" इसने उन भिक्षुओं और भिक्षुणियों द्वारा धर्म-प्रसार को सुनिश्चित किया जो व्यापारियों और वणिकों के समान मार्गों से यात्रा करते थे। परस्पर जुड़े केंद्रों से होने वाले केवल "क्रमिक प्रसार" (contact expansion) के मॉडल पर निर्भर रहने के बजाय, मध्य एशिया से चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार "लंबी दूरी के संचरण" (long-distance transmission) के पैटर्न को दर्शाता है। यह मॉडल अप्रत्याशित यात्रा मार्गों और "एक साथ कई केंद्रों से" थल एवं समुद्री मार्गों द्वारा ग्रंथों व विचारों के आगमन की व्याख्या करता है। यह संचरण केवल उच्च बौद्धिक विद्वान भिक्षुओं द्वारा ही संचालित नहीं था; बल्कि अज्ञात विदेशी भिक्षुओं (हुसेंग) ने भी निचले सामाजिक स्तरों पर जादूगरों, चमत्कार करने वालों और अवशेषों की प्रामाणिकता सिद्ध करने वालों के रूप में प्रमुख भूमिका निभाई।

2.5.3 भौतिक एवं साँस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ (Material and Cultural Manifestations)

इन मार्गों पर संस्कृतियों का यह अभिसरण भौतिक कलाकृतियों, राजनीतिक उपाधियों और धार्मिक प्रथाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिम में

प्रवासन करने वाले समूहों—जैसे इंडो-ईरानी, इंडो-ग्रीक, शक, कुषाण और हूण—के साथ दीर्घकालिक अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप कला और वास्तुकला में भारतीय, ईरानी, हेलेनिस्टिक और स्थानीय विशेषताओं का अनुपम संश्लेषण हुआ। उत्तरी चीन में बसे सोग्डियन आप्रवासी (जिनकी जड़ें रेशम मार्ग पर स्थित थीं) इस विनिमय का एक सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं; उनके अंत्येष्टि पत्थरों पर उत्कीर्ण कलाकृतियाँ पारसी धर्म से प्रेरित प्रतीकों (जैसे अग्नि वेदी) को स्थानीय चीनी दफ़न परंपराओं (जैसे पत्थरों के ताबूतों और पौराणिक चीनी जीवों के प्रयोग) के साथ जोड़ती हैं। ये विविध तत्व (जिनमें मध्य एशियाई लोगों और उनके पहनावे के चित्रण शामिल हैं) यह दर्शाते हैं कि ये व्यक्ति दो भिन्न "साँस्कृतिक प्रतिमानों के मध्यवर्ती क्षेत्र" (space between) में सक्रिय रूप से अपनी एक नई पहचान गढ़ रहे थे। इसके अलावा, पश्चिमी दक्कन की गुफाओं के अभिलेखों में 'यवन' शब्द (जो पश्चिमी आगंतुकों से जुड़ा था) का उल्लेख स्थानीय बौद्ध प्रतिष्ठानों के दाताओं के रूप में मिलता है, जो यह सिद्ध करता है कि अंतर-साँस्कृतिक स्वीकार्यता ने धार्मिक नेटवर्क्स के विस्तार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य मत भी इसी प्रकार फैले, जैसे ईसाइयत लाल सागर और मेसोपोटेमिया के व्यापारियों के माध्यम से पूर्व तक पहुँची, तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के समुद्री क्षेत्रों में मुस्लिम व्यापारिक प्रवासियों के माध्यम से इस्लाम का विस्तार हुआ। ईसाई संसार में भी संतों के अवशेषों की पूजा (cult of saints) का उदय हुआ, जिसने पूरे एशिया में बौद्ध अवशेषों की पूजा के समान पवित्र अवशेषों के आदान-प्रदान की परंपरा को जन्म दिया।

2.6 प्राचीन व्यापारिक अवसंरचना एवं अंतर-साँस्कृतिक गतिशीलता (The Ancient Trade Infrastructure and Cross-Cultural Dynamics)

प्राचीन व्यापारिक अवसंरचना और अंतर-साँस्कृतिक गतिशीलता के अंतर्गत प्रमुख व्यापारिक मार्गों के नियामक परिवेश, भौतिक विनिमय की विशिष्ट प्रकृति, तथा अंतर-एशियाई संचरण पर क्षेत्रीय राजनीतिक सत्ता और विशेषीकृत गतिशीलता के गहरे प्रभावों का अध्ययन शामिल है।

2.6.1 राजनीतिक नियंत्रण एवं मार्ग विनियमन (Political Control and Route Regulation)

लंबी दूरी के थल व्यापार की सफलता काफी हद तक शक्तिशाली साम्राज्यों द्वारा स्थापित राजनीतिक स्थिरता और नियामक नियंत्रण पर निर्भर थी। लगभग 90 से 130 ईस्वी के मध्य, उत्तरी चीन से रोम तक जाने वाले थल रेशम मार्ग को पार करने के लिए केवल चार प्रमुख साम्राज्यीय सत्ताओं—चीन, कुषाण साम्राज्य, पार्थिया और रोमन साम्राज्य—के क्षेत्रों से होकर गुजरना पड़ता था। 106 ईस्वी तक रोमन सत्ता ने यूफ्रेट्स (फरात) नदी के पश्चिम स्थित सभी थल मार्गों पर अपना दृढ़ नियंत्रण स्थापित कर लिया था। रोमन सीमाओं के भीतर, "स्वतंत्र जर्मनी"

से होकर गुजरने वाला व्यापार प्रारंभ में अनियंत्रित था, किंतु 173 ईस्वी में सम्राट मार्कस ऑरेलियस ने निश्चित व्यापारिक स्थलों का निर्धारण करके इस स्वतंत्रता को सीमित कर दिया।

इसके विपरीत, समुद्री अक्ष पर रोमन चुंगी नियम अत्यंत कठोर थे; राज्य पूर्वी आयातों पर 25% का भारी आयात कर (कस्टम ड्यूटी) वसूलता था। यद्यपि भारतीय बंदरगाहों में विदेशी व्यापारियों को कभी-कभी स्थानीय शासकों द्वारा विशेषाधिकार प्रदान किए जाते थे, किंतु रोमन अधिकारियों (संभवतः रोमन सैन्य चौकियों) के पास अक्सर चुँगी लगाने या दी गई रियायतों को रद्द करने का अधिकार होता था। यह नियामक नियंत्रण विशिष्ट बंदरगाहों तक भी विस्तृत था; जैसा कि पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई (PME) में उल्लेख मिलता है कि सांदनेस द्वारा कल्लियेना (कल्याण) बंदरगाह पर अधिकार करने के बाद वहाँ व्यापार बाधित हो गया और ग्रीक जहाजों को जबरन बारिगाज़ा (भड़ौच) की ओर मोड़ दिया गया।

2.6.2 भौतिक विनिमय की विशिष्टताएँ एवं प्राप्त साक्ष्य (Specifics of Material Exchange and Finds)

काली मिर्च और रेशम के प्रसिद्ध व्यापार के अलावा, भौतिक विनिमय की वस्तुएँ साँस्कृतिक सीमाओं के पार आपूर्ति और माँग की जटिल प्रणालियों को उजागर करती हैं। प्लिनी द एल्डर जैसे रोमन लेखकों ने भारी व्यापार घाटे पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा कि भारत प्रतिवर्ष रोमन साम्राज्य की संपत्ति से 5 करोड़ सेस्टरसेस अवशोषित कर लेता था और उन्हीं वस्तुओं को सौ गुना अधिक मूल्य पर वापस बेचता था।

पूर्व में चीनियों द्वारा जिन आयातों की माँग की जाती थी, उनमें सोना, चाँदी, दुर्लभ मूल्यवान पत्थर, मूँगा, अंबर (कहरवा) और काँच जैसी कम वजन किंतु उच्च मूल्य वाली वस्तुएँ शामिल थीं। इनमें से कई दुर्लभ पत्थर मूल रूप से भारत से प्राप्त किए जाते थे और अलेक्जेंड्रिया में तराशे व पॉलिश किए जाते थे, जिसके कारण संभवतः चीनियों को यह भ्रम हुआ कि इन वस्तुओं का मूल उत्पत्ति स्थल रोम ही था। इसके विपरीत, "स्वतंत्र जर्मनी" में आयातित रोमन वस्तुओं में एल. एंसियस डियोडोरस की मुहर वाले काँस्य के पात्र (पटेरा) मिले हैं, जो यह दर्शाते हैं कि व्यापार की वस्तुओं में घिसे-पिटे और मरम्मत किए गए प्राचीन पात्र भी शामिल थे जिन्हें दफ़नाए जाने के समय तक पुरानी विरासत माना जाता था।

लाल सागर के अफ्रीकी तट से मिले पुरातात्विक अवशेष भी विशिष्ट क्षेत्रीय व्यापार की पुष्टि करते हैं। अफ्रीका के फेज़ान क्षेत्र में हुए उत्खनन में रोमन एम्फोरा, काँच का सामान, चिराग और टेरा सिगिलाटा पात्र प्राप्त हुए हैं, जो सहारा मरुस्थल के उत्तर की ओर हाथीदाँत जैसी

वस्तुओं के परिवहन का संकेत देते हैं। पोंपेई (इटली) से प्राप्त भारतीय हाथीदाँत की लक्ष्मी-प्रतिमा भूमध्य सागरीय क्षेत्र तक भारतीय निर्मित उच्च-मूल्य की वस्तुओं के पहुँचने का एक अनुपम उदाहरण है।

2.6.3 संचरण एवं गतिशीलता की गतिशीलता (Dynamics of Transmission and Mobility)

व्यापारिक नेटवर्क्स ने धार्मिक विस्तार हेतु सुगम मार्ग प्रदान किए, जो पारगमन क्षेत्रों (ट्रांजिट ज़ोन) में विशेषीकृत संगठनात्मक मॉडलों और पुरातात्विक सामग्रियों के माध्यम से स्पष्ट होते हैं–

1. **सोग्डियन व्यापारिक नेटवर्क और पहचान :** रेशम मार्ग की विभिन्न बस्तियों में व्यापार संचालन के लिए सोग्डियन मुख्य रूप से उत्तरदायी थे; उन्हें एक निश्चित राष्ट्र के बिना यायावर व्यापारियों के रूप में वर्गीकृत किया गया था। उनकी जटिल पहचान और गतिशीलता उत्तरी चीन में प्राप्त उनकी अंत्येष्टि कला (funerary art) में प्रतिबिंबित होती है, जो विदेशी और स्थानीय चीनी तत्वों के सम्मिश्रण को दर्शाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे दो भिन्न "साँस्कृतिक प्रतिमानों के मध्यवर्ती क्षेत्र" (space between) में सक्रिय रूप से अपनी पहचान का निर्माण कर रहे थे।

2. **सहायक मार्ग एवं दस्तावेज़ी साक्ष्य :** दक्षिण एशिया के उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्रों में, ऊपरी सिंधु क्षेत्र से होकर गुजरने वाले सहायक मार्ग अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे, जो उत्तरापथ को तारिम बेसिन के रेशम मार्ग से जोड़ते थे। ये मार्ग महत्त्वपूर्ण पारगमन क्षेत्र थे, जिनकी पुष्टि ब्राह्मी, खरोष्ठी, सोग्डियन, बैक्ट्रियन, चीनी और तिब्बती लिपियों में उत्कीर्ण बहुभाषी शैलचित्रों और अभिलेखों से होती है। ये अभिलेख घुमंतू भिक्षुओं और लंबी दूरी के व्यापारियों सहित विविध यात्रियों की उपस्थिति को दर्ज करते हैं। इसके अलावा, दक्षिणी रेशम मार्ग पर निया प्राकृत बोली में मिले लगभग एक हजार खरोष्ठी दस्तावेज़ तीसरी और चौथी शताब्दी ईस्वी के दौरान प्रशासनिक अधिकारियों, स्थानीय व्यापारियों और बौद्ध भिक्षुओं के बीच के व्यावसायिक संबंधों की बहुमूल्य जानकारी प्रदान करते हैं।

3. **साहित्यिक एवं पुरालेखीय संदर्भ :** मौर्य सम्राट अशोक के शिलालेख (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य) ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों के प्राचीनतम निश्चित अभिलेख प्रदान करते हैं और प्रारंभिक बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के पुनर्गठन में बाद के साहित्यिक विवरणों की तुलना में प्राथमिक स्रोत के रूप में अधिक प्रामाणिक माने जाते

हैं। दूसरी ओर, महाभारत की प्राचीनतम पर्व-सूची (जिसमें अनुशासनपर्व जैसी उत्तरवर्ती प्रक्षिप्तियाँ शामिल नहीं हैं) उन वैचारिक तनावों को दर्शाती है जो कुछ विद्वानों के अनुसार अशोक जैसे बौद्ध शासकों की संन्यास-परक नीतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुए थे।

ये सभी बिंदु यह स्पष्ट करते हैं कि प्राचीन अंतर-क्षेत्रीय व्यापार में न केवल बड़े पैमाने पर भौतिक वस्तुओं का आदान-प्रदान शामिल था, बल्कि जटिल कानूनी ढाँचे, विशाल भौगोलिक बाधाओं को पार करने वाले विशेषीकृत व्यापारी समुदाय, तथा राजनीतिक नियंत्रण और साँस्कृतिक सम्मिश्रण के बीच निरंतर चलने वाली अंतःक्रिया भी शामिल थी।

2.7 सारांश (Summary)

उपर्युक्त इकाई दक्षिण एशिया को ग्रीको-रोमन संसार, मध्य एशिया और पूर्व एशिया से जोड़ने वाले व्यापारिक नेटवर्क्स का अनुशीलन करती है, जिसमें मुख्य संस्थागत तंत्र के रूप में 'व्यापारिक समुदाय' (Trade Diaspora) पर विशेष बल दिया गया है जहाँ विदेशी व्यापारी अंतर-साँस्कृतिक मध्यस्थों के रूप में कार्य करते थे। यह इकाई स्थल मार्गों—जिनमें भारत के उत्तरापथ व दक्षिणापथ तथा अंतर्महाद्वीपीय रेशम मार्ग शामिल हैं—के साथ-साथ लाल सागर और हिंद महासागर से होकर गुजरने वाले समुद्री मार्गों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है। समुद्री वाणिज्य को मानसूनी हवाओं के व्यवस्थित ज्ञान से संबल मिला, जिसका प्रामाणिक ब्योरा 'पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई' जैसे ग्रंथों में प्रलेखित है। बौद्ध धर्म का प्रसार इस वाणिज्य से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था, क्योंकि मठवासी संस्थाओं को समृद्ध व्यापारियों से भौतिक दान और धार्मिक पुण्य प्राप्त होता था, जिसने एक परस्पर सहयोगी धर्म-आधारित अर्थव्यवस्था का निर्माण किया। पुरातात्विक साक्ष्य—जैसे धातु-पिंड (बुलियन) के रूप में प्रयुक्त रोमन सिक्के, उत्कृष्ट मृद्भांड, तथा गांधार और ऊपरी सिंधु जैसे प्रमुख संपर्क क्षेत्रों में उत्कीर्ण बहुभाषी अभिलेख—इन व्यापक व बहु-दिशात्मक अंतःक्रियाओं से उत्पन्न गहरे साँस्कृतिक एवं भौतिक समाकलन की पुष्टि करते हैं। यह इकाई निष्कर्ष निकालती है कि रोम, पार्थिया और कुषाण जैसी साम्राज्यीय सत्ताओं द्वारा विनियमित इस व्यापार ने विचारों और वस्तुओं के आदान-प्रदान हेतु स्थायी मार्ग स्थापित किए, यद्यपि इसके वास्तविक परिमाण और सटीक स्वरूप का पुरातात्विक पुनर्मूल्यांकन आज भी निरंतर जारी है।

व्यापार और साँस्कृतिक प्रसार के मध्य के संबंध को एक जटिल भौगोलिक एवं राजनीतिक पहेली के रूप में देखा जा सकता है: इसके किसी एक महत्त्वपूर्ण घटक (जैसे किसी प्रमुख

बंदरगाह या पर्वतीय दर्रे) पर नियंत्रण स्थापित कर लेने मात्र से ही पूरे महाद्वीप में प्रवाहित होने वाले वाणिज्य, विचारों और साँस्कृतिक परिवर्तनों पर अत्यंत व्यापक एवं निर्णायक प्रभाव पड़ता था।

2.8 सहायक सामग्री (Suggested Readings)

- E. H. Warmigton, *Commerce between the Roman Empire and India*, Curzon Press, 1974.
- J. Thorley, *'The Silk Trade between China and the Roman Empire at its Height*, CIRCA A.D 90- 130', Greece and Rome, vol. 18, No. 1, pp. 71-80.
- Jason Emmanuel Neelis *'Old Roads in the Northwestern Borderlands' in Early Buddhist Transmission and Trade Networks: Mobility and Exchange within and beyond the Northwestern Borderlands of South Asia*, Brill, 2011. (chapter 4)
- Marilyn Martin Rhie (2002): *Early Buddhist Art of China and Central Asia*. Volume II: The Eastern Chin and Sixteen Kingdoms Period in China and Tumshuk, Kucha and Karashar in Central Asia, Leiden: Brill, pp. 388-399.
- Mortimer Wheeler, *Rome Beyond the Imperial Frontiers*, London, G. Bell and Sons, Ltd, 1954.
- Philip D Curtin, *Cross-Cultural Trade in World History*, CUP 1985.
- Raheshwari Ghose, (ed.) *Kizil on the Silk Road: Crossroads of Commerce and Meeting of Minds*, Marg Foundation, 2008, pp. 24-31.
- Xinru Liu, *'Silk and Religions in South Asia c. AD 600-1200'*, Journal of World History, Vol. 6, no. 1 (spring 1995).

व्यापार एवं वाणिज्य का अंतर-साँस्कृतिक प्रभाव

(Cross-Cultural Impact of Trade and Commerce)

3.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को व्यापार और वाणिज्य के व्यापक अंतर-साँस्कृतिक प्रभावों के विभिन्न पहलुओं से भली-भाँति परिचित कराना है। इसका प्राथमिक ध्यान इस बात पर केंद्रित है कि किस प्रकार भौतिक विनिमय, व्यापारिक मार्गों और क्षेत्रीय गतिशीलता ने पूरे यूरेशिया तथा अफ्रीका में सामाजिक पहचान, साहित्य, कला और राजनीतिक विचारों में युगगामी परिवर्तन उत्पन्न किए। इसके साथ ही, यह इकाई इन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने के लिए पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों का समालोचनात्मक परीक्षण प्रस्तुत करती है।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह इकाई प्राचीन काल में भारत, ग्रीको-रोमन संसार, पूर्व एशिया और तिब्बत के बीच स्थापित विशाल व्यापारिक एवं वाणिज्यिक नेटवर्क्स के प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप उभरे साँस्कृतिक अंतर्संबंधों के जटिल एवं विविध स्वरूपों का अनुशीलन करती है। इसका मुख्य ध्येय यह प्रदर्शित करना है कि किस प्रकार वस्तुओं, जन-सामान्य और पूँजी के आवागमन ने ऐसी साँस्कृतिक विविधताओं को जन्म दिया, जिन्होंने जनसांख्यिकी, भाषा, साहित्य और कलाकृतियों जैसे विभिन्न क्षेत्रों को गहराई से प्रभावित किया। वाणिज्य की इस सर्वव्यापी पहुँच का भौगोलिक प्रमाण साम्राज्यीय रोम की उन सुदूर प्रसार-नीतियों में दिखाई देता है जो उसकी औपचारिक साम्राज्यवादी सीमाओं के बहुत पार तक फैली हुई थीं। इसके साक्ष्य तीन प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से दर्ज हैं– यूरोप–विशेष रूप से "स्वतंत्र जर्मनी" (जिसमें स्कैंडिनेविया, लातविया और पोलैंड शामिल हैं); अफ्रीका (जिसे सहारा क्षेत्र और पूर्वी तट में विभाजित किया गया है); तथा एशिया (जिसमें भारत-पाकिस्तान उपमहाद्वीप, अफगानिस्तान और सुदूर पूर्व शामिल हैं)।

विशिष्ट अध्ययनों के माध्यम से विद्यार्थी यह विश्लेषण कर सकेंगे कि किस प्रकार भौतिक विनिमय ने साँस्कृतिक सम्मिश्रण और संश्लेषण को उत्प्रेरित किया। यह ढाँचा अत्यंत गहन अंतःक्रिया के क्षणों में कलाकारों और संरक्षकों को दो भिन्न "साँस्कृतिक प्रतिमानों के मध्यवर्ती क्षेत्र" (space between) में सक्रिय रूप से स्थित मानकर इन जटिल विनिमयों की व्याख्या करता है। इस साँस्कृतिक प्रवाह के भौतिक साक्ष्यों में रेशम का व्यापक संचलन शामिल है, जो

उत्तर-प्राचीन और उत्तर-शास्त्रीय काल में यूरेशिया के पार तीन प्रमुख धार्मिक आंदोलनों के विकास के साथ समानांतर रूप से जुड़ा हुआ था तथा जिसने भिक्षुओं, योद्धाओं और व्यापारियों की गतिशीलता को परस्पर एक सूत्र में बाँधा।

इसके अतिरिक्त, यह इकाई इस बात का भी अन्वेषण करती है कि व्यापारिक नेटवर्क्स ने विचारधारात्मक ढाँचों को किस प्रकार प्रभावित किया। इसका एक ज्वलंत उदाहरण महाभारत जैसे ग्रंथों का अनुशीलन प्रस्तुत करता है, जहाँ उपलब्ध सबसे प्राचीन पर्व-सूची के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि उसमें अनुशासनपर्व अनुपस्थित है। यह साक्ष्य यह संकेत देता है कि समाज में "ब्राह्मणों की सर्वोच्चता के दावों" का समर्थन करने वाला यह पर्व वास्तव में महाकाव्य में उत्तरवर्ती काल में जोड़ा गया एक प्रक्षिप्त (बाद में मिलाया गया) हिस्सा था। इन भौतिक और बौद्धिक परिवर्तनों का परीक्षण करके यह इकाई यह स्पष्ट करती है कि व्यापार और वाणिज्य ने इन वैश्विक धमनियों से जुड़े समाजों पर कितना गहरा और परस्पर-रूपांतरणकारी प्रभाव डाला।

3.2 साँस्कृतिक विनिमय का स्वरूप एवं संकर पहचान (The Nature of Cultural Exchange and Hybrid Identity)

अंतर-साँस्कृतिक विनिमय और उससे निर्मित होने वाली 'संकर पहचान' (hybrid identity) को समझने का वैचारिक ढाँचा यह दर्शाता है कि साँस्कृतिक अंतःक्रिया अपने मूल स्वभाव में ही अत्यंत जटिल होती है। इसमें किसी वस्तु, विचार या विश्वास-प्रणाली का भौगोलिक और साँस्कृतिक सीमाओं के पार स्थानांतरण शामिल होता है, जिसमें प्रायः एक कालानुक्रमिक विलंब (temporal delay) भी दिखाई देता है। वाणिज्यिक विनिमयों में ऐसी अंतःक्रिया के लिए आमतौर पर विशेष संस्थागत प्रबंधों की आवश्यकता होती है, क्योंकि भिन्न पृष्ठभूमियों वाले अपरिचित व्यक्ति एक-दूसरे के लिए अप्रत्याशित और संभावित रूप से संदेहास्पद प्रतीत हो सकते हैं। यद्यपि 'व्यापारिक समुदाय' (trade diaspora) जैसी संस्थाओं द्वारा सदियों से की गई मध्यस्थता का उद्देश्य साँस्कृतिक मतभेदों को कम करना था, फिर भी कुछ प्रवासी समूहों ने अपने भ्रमणशील व्यापारियों को स्थानीय संस्कृति में पूरी तरह विलीन होने से रोकने तथा अपनी मूल संस्कृति की अखंडता को बनाए रखने के लिए सामाजिक नियंत्रण की जटिल प्रणालियाँ निर्मित की थीं।

हालाँकि, अधिक सूक्ष्म और अंतर्दृष्टिपूर्ण दृष्टिकोण यह है कि पहचान को किसी स्थिर या पूर्व-निर्धारित मॉडल के रूप में न देखकर एक ऐसी गतिशील प्रक्रिया के रूप में देखा जाए जो तीव्र अंतर-साँस्कृतिक संपर्कों के क्षणों में नवीन संरचनाओं के माध्यम से विकसित होती है। यह

प्रक्रिया यह संकेत देती है कि व्यक्ति अक्सर दो स्थापित "साँस्कृतिक प्रतिमानों के मध्यवर्ती क्षेत्र" (space between) में निवास करते हैं। इस संदर्भ में, विनिमय में केवल कोई मूर्त वस्तु या गलत समझा गया आख्यान ही शामिल नहीं होता, बल्कि अक्सर किसी व्यक्तिगत संरक्षक या अज्ञात शिल्पी द्वारा व्याख्यायित कोई अमूर्त साँस्कृतिक विचार या विश्वास शामिल होता है।

धार्मिक और साँस्कृतिक तत्वों की गतिशीलता को समझने के लिए क्रमिक प्रसार (contact expansion) के पारंपरिक सिद्धांतों से आगे बढ़कर एक नए वैचारिक दृष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है। विद्वानों का मत है कि "लंबी दूरी के संचरण" (long-distance transmission) का मॉडल बौद्ध धर्म जैसी धार्मिक परंपराओं के प्रसार को, विशेष रूप से दक्षिण एशिया और चीन के मध्यवर्ती पारगमन क्षेत्रों में, अधिक स्पष्ट रूप से समझाता है। यह मॉडल इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लंबी दूरियों के तय होने की प्रक्रिया में जब बौद्ध विचार, प्रतीक और संस्थाएँ स्थानीय संस्कृतियों के संपर्क में आती हैं, तो उनमें अनिवार्य रूप से व्यापक रूपांतरण और अनुकूलन घटित होता है। इस प्रक्रिया का विश्लेषण प्रायः 'नेटवर्क दृष्टिकोण' (network approach) के माध्यम से किया जाता है, जो आर्थिक, राजनीतिक या धार्मिक सत्ता को जोड़ने वाले 'मार्गों' (conduits) और 'केंद्रों' (nodes) के माध्यम से भौतिक व साँस्कृतिक वस्तुओं के 'प्रवाह' को चिन्हित करता है। ये धार्मिक नेटवर्क अक्सर वाणिज्यिक विनिमय हेतु स्थापित मार्गों और प्रमुख केंद्रों के साथ आच्छादित (overlap) होते थे।

संकर पहचान के इस जीवंत निर्माण का एक उत्कृष्ट उदाहरण उत्तर चीन में उत्खनित छठी शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्द्ध के उन पाषाण अंत्येष्टि बक्सों (funerary furniture) में दिखाई देता है जो सोग्डियन आप्रवासियों के थे। सोग्डियन लोग रेशम मार्ग पर होने वाले व्यापार में संलग्न प्रमुख समूह थे, जिन्हें प्रायः बिना किसी निश्चित देश वाले घुमंतू व्यापारियों के रूप में वर्णित किया जाता था। उनकी समाधि-सामग्रियाँ–जिम्मे बंद ताबूत, खुले चबूतरेदार मंच (couches) और गृह-आकार के शव-पात्र (sarcophagi) शामिल थे–स्थानीय रूप से निर्मित की गई थीं, किंतु उन पर चीनी, पारसी (ज़ोरोस्ट्रियन) और मध्य एशियाई परंपराओं से प्रेरित विविध दृश्यावलियाँ उत्कीर्ण थीं। उदाहरण के तौर पर, सोग्डियन संरचनाओं को पारसी धर्म से प्रेरित प्रतीकों जैसे 'अग्नि वेदी' से सुसज्जित किया गया था, जिसके पास कभी-कभी आधा मानव व आधा पक्षी रूपी पुरोहित (magus) दिखाया गया है जिसका मुख 'पदाम' (padām) से ढका होता था। फिर भी, इन तत्वों को पारंपरिक चीनी समाधि संरचनाओं में समाहित किया गया था। शिकार, दावतों और बैलगाड़ियों व घोड़ों के प्रयोग जैसे अभिजात वर्ग की गतिविधियों के चित्रों ने–जो उत्तर

चीन में उच्च सामाजिक स्थिति के प्रतीक थे–स्थानीय कुलीन वर्ग के साथ एक साझा सामाजिक संबंध स्थापित किया। सोग्डियन पैतृक संबंधों, पारसी अनुष्ठानिक संदर्भों और चीनी अभिजात भौतिक संस्कृति का यह सम्मिश्रण एक ऐसी सचेत एवं सक्रिय पहचान-निर्माण का उदाहरण है जो किसी एक क्षेत्रीय निष्ठा से बंधा नहीं था; इस प्रकार यह परस्पर विरोधी साँस्कृतिक नेटवर्क्स के "मध्यवर्ती क्षेत्र" (space between) में उन व्यक्तियों की उपस्थिति को सटीक रूप से निरूपित करता है।

यह अध्ययन उन सैद्धांतिक मॉडलों और भौतिक साक्ष्यों का परीक्षण करता है जो यह दर्शाते हैं कि किस प्रकार निरंतर होने वाली अंतर-साँस्कृतिक अंतःक्रिया ने किसी एक संस्कृति को पूरी तरह अपनाने के बजाय एक संकर पहचान के निर्माण को जन्म दिया।

3.2.1 कलात्मक विनिमय का सैद्धांतिक ढाँचा (Theoretical Framework of Artistic Exchange)

बोनी चेंग जैसे विद्वानों द्वारा प्रतिपादित 'कलात्मक विनिमय का सैद्धांतिक ढाँचा' अंतर-साँस्कृतिक अंतःक्रिया को एक अत्यंत जटिल विषय मानता है, जिसमें विभिन्न स्थानों और क्षेत्रों के पार किसी वस्तु, विचार या विश्वास-प्रणाली का स्थानांतरण अनिवार्य रूप से शामिल होता है। इस प्रक्रिया में मौलिक रूप से एक कालानुक्रमिक विलंब (temporal delay) निहित होता है, जिसके दौरान कोई वस्तु या अवधारणा विविध व्यक्तियों के माध्यम से गुजरती हुई पुनर्व्याख्यायित या प्रेषित होती है। इस प्रक्रिया में शामिल वस्तुएँ विनिमय के प्रत्यक्ष परिणाम हो सकती हैं–जैसे रोमन काँच की वस्तुएँ या बैक्ट्रियन चाँदी के पात्र, जो सीधे एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाए गए विदेशी आयात थे। इसके अलावा, ये वस्तुएँ उत्तरवर्ती अनुकूलन के लिए उत्प्रेरक का कार्य भी कर सकती हैं, जो रूपगत, प्रतिमाशास्त्रीय (iconographic) या तकनीकी माध्यमों से रूपांतरित या पुनर्कल्पित होती हैं। किसी विदेशी कलात्मक अभिप्राय (exotic motif) के संचरण को आमतौर पर तीन चरणों में चिन्हित किया जा सकता है– प्रविष्टि (insertion), अनुकूलन (adaptation), और समाकलन (integration)।

हालाँकि, यह ढाँचा विश्लेषण की पारंपरिक पद्धतियों की समालोचना करता है, विशेषकर तब जब उन्हें ऐसी जटिल कलाकृतियों पर लागू किया जाता है जो किसी सरल वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करतीं। किसी स्थानीय रूप से निर्मित कलाकृति का परीक्षण करते समय, विनिमय में केवल किसी गलत समझे गए आख्यान या रूप के बजाय किसी व्यक्तिगत संरक्षक या अज्ञात शिल्पी द्वारा व्याख्यायित कोई अमूर्त साँस्कृतिक विचार या विश्वास शामिल हो सकता है। ऐसे रूपांतरण मार्गों को चिन्हित करने में अक्सर साक्ष्यों की कमी या यह जानने की

कठिनाई आड़े आती है कि क्या वह चित्रांकन प्रत्यक्ष संपर्क, किसी सुवाह्य (portable) प्रतिकृति, या पूर्णतः काल्पनिक सृजन या गलत व्याख्या से प्रेरित था। पारंपरिक अध्ययन प्रायः जटिल कलाकृतियों को विशिष्ट संस्कृतियों से जोड़ने का प्रयास करते हैं और सुदूर क्षेत्रों के दृश्य मानकों के आधार पर उनकी प्रतिमाशास्त्र का मूल्यांकन करते हैं; इस दृष्टिकोण में विनिमय की प्रक्रिया में निहित मौलिक रचनात्मकता को अनदेखा करने का जोखिम बना रहता है।

इसलिए, चेंग यह सुझाव देती हैं कि सबसे प्रभावी सैद्धांतिक दृष्टिकोण यह है कि स्थिर मॉडलों का अनुसरण करने के बजाय कलाकृतियों को तीव्र अंतःक्रिया के क्षणों में निर्मित नवीन संरचनाओं के रूप में देखा जाए। यह दृष्टिकोण विश्लेषण को पृथक टुकड़ों के अध्ययन से हटाकर जटिल पहचानों के व्यापक परिप्रेक्ष्य की ओर मोड़ता है। संक्रमणकालीन भौगोलिक क्षेत्रों में कलात्मक तत्वों और दफ़न प्रथाओं की देखी गई विविधता यह दर्शाती है कि इन व्यक्तियों ने दो स्थापित "साँस्कृतिक प्रतिमानों के मध्यवर्ती क्षेत्र" (space between) में सक्रिय रूप से अपनी पहचान का निर्माण किया। यह पद्धति यह रेखांकित करती है कि पहचान सम्बंधपरक (relational) होती है और विद्यमान परंपराओं के नेटवर्क से गतिशील रूप से निर्मित होती है, जिससे साँस्कृतिक रूप से जटिल परिवेशों में परंपराओं का पुनर्कल्पन मौलिकता के कार्य के रूप में सामने आता है।

3.2.2 केस स्टडी : उत्तर चीन में सोग्डियन अंत्येष्टि कला (Case Study: Sogdian Funerary Art in North China)

उत्तर चीन की सोग्डियन अंत्येष्टि कला 'संकर पहचान' का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है, जो छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध की राजनीतिक उथल-पुथल के दौर में रेशम मार्ग व्यापार द्वारा सुलभ हुए संस्कृतियों के जटिल सम्मिश्रण को दर्शाती है। इन विशाल समाधियों में दफनाए गए व्यक्ति बहुधा सोग्डियन आप्रवासी थे, जिन्हें किसी निश्चित देश के बिना घुमंतू व्यापारियों के रूप में देखा जाता था; ये मुख्य रूप से वाणिज्यिक गतिविधियों में संलग्न थे और **साबाओ** (sabao) जैसे वरिष्ठ प्रशासनिक या धार्मिक पदों पर आसीन थे।

अंत्येष्टि कला के ये अवशेष आमतौर पर स्थानीय रूप से निर्मित पाषाण-सामग्रियों के रूप में प्राप्त होते हैं, जिनमें बंद ताबूत, खुले चबूतरेदार मंच (जैसे कांग ये और अन जिया की समाधियाँ) तथा गृह-आकार के शव-पात्र (जैसे विरकॉक और यू होंग की समाधियाँ) शामिल हैं, जो प्रायः रेशम मार्ग के पूर्वी छोर चांगआन (आधुनिक शीआन) के निकट पाए गए हैं। ये अंत्येष्टि पाषाण-सामग्रियाँ विविध और कभी-कभी परस्पर विरोधी प्रतिमाशास्त्र के प्रदर्शन हेतु एक फलक (canvas) के रूप में कार्य करती थीं, जो यह स्पष्ट करती हैं कि समाधिस्थ व्यक्तियों ने स्थापित

"साँस्कृतिक प्रतिमानों के मध्यवर्ती क्षेत्र" (space between) में सक्रिय रूप से अपनी पहचान गढ़ी थी।

3.2.3 प्रतिमाशास्त्र एवं अनुष्ठान में संकरता (Hybridity in Iconography and Ritual)

सोग्डियन मातृभूमि और उनकी पारसी (ज़ोरोस्ट्रियन) मान्यताओं के सबसे स्पष्ट संदर्भों में 'अग्नि वेदी' का निरूपण शामिल है, जो सबसे अधिक दोहराया जाने वाला अभिप्राय है। विरकॉक के शव-पात्र पर इस अग्नि वेदी की देखरेख करते हुए एक आधा मानव व आधा पक्षी रूपी पुरोहित (magus) दिखाया गया है, जो पवित्र अग्नि को दूषित होने से बचाने के लिए अपने मुख पर 'पदाम' (padām - मुखावरण) पहने हुए है। अन्य सोग्डियन दृश्यों में आत्मा की पारलौकिक यात्रा (जैसे 'चिनवाद पुल' का दृश्य) और पारसी अंत्येष्टि अनुष्ठानों का अंकन शामिल है। इसके अतिरिक्त, इन पाषाण फलकों पर सोग्डियन व्यक्तियों को उनकी मध्य एशियाई शारीरिक विशेषताओं (लंबे बाल, बड़ी नाक) और पहनावे के साथ दिखाया गया है, जो शिकार करने, दावतें उड़ाने और गुंबददार तंबुओं (yurts) में पड़ाव डालने जैसी गतिविधियों में संलग्न हैं, जो उनके मूल उद्गम और यायावर जीवन-शैली को रेखांकित करते हैं।

अपनी मध्य एशियाई जड़ों के बावजूद, सोग्डियनों ने सचेत रूप से ऐसे तत्वों को भी शामिल किया जो उन्हें स्थानीय चीनी अभिजात वर्ग से जोड़ते थे, जो संस्कृति-ग्रहण (acculturation) की प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है। उन्होंने चीनी दफ़न प्रथाओं, विशेष रूप से बड़े पाषाण शव-पात्रों के प्रयोग को अपनाया, जो छोटी मृण्मय या पाषाण अस्थि-मंजूषाओं (astōdān) में अस्थियों को रखने की उनकी पारंपरिक सोग्डियन प्रथा के सर्वथा विपरीत था। ली दान के ताबूत पर दिशाओं के चार पारंपरिक चीनी प्रतीकों (ड्रैगन, बाघ, फीनिक्स और कृष्ण योद्धा) जैसे दृश्य उकेरे गए थे। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सोग्डियनों ने अभिजात वर्ग की गतिविधियों (जीवंत शिकार दृश्य और भव्य दावतें) को प्रदर्शित किया, जिसने चीनी कुलीन वर्ग के साथ एक साझा सामाजिक संबंध स्थापित किया। यह समानता कई सोग्डियन पाषाण-मंचों पर उत्कीर्ण बैलगाड़ी और सुसज्जित घोड़े की उपस्थिति से स्पष्ट होती है, जो उत्तर चीन में उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा और कुलीन परिवहन के स्वीकृत प्रतीक थे।

इसके परिणामस्वरूप निर्मित कला एक ऐसी रचनात्मक संश्लेषण प्रक्रिया को दर्शाती है जहाँ स्थानीय शिल्पकारों ने विदेशी प्रभावों की पुनर्व्याख्या की। उदाहरण के लिए, बारम्बार चित्रित किया गया गुंबददार मंडप सोग्डियन वास्तुकला की विशेषता के रूप में "चीनी कल्पना के अनुसार" दर्शाया गया है, जिसमें अक्सर बौद्ध तत्वों का सम्मिश्रण किया गया है। महत्त्वपूर्ण

बात यह है कि जहाँ सोग्डियनों ने चीनी संरचनाओं और अभिजात विषयों को अपनाया, वहीं उन्होंने कुछ अन्य स्थानीय रीति-रिवाजों को चयनात्मक रूप से अस्वीकार भी किया—जैसे कि शव के साथ बड़ी संख्या में चीनी मिट्टी की मूर्तियाँ (ceramic figurines) दफ़नाने की प्रथा—जिससे उन्होंने साँस्कृतिक सीमाओं के मध्य अपनी एक बहु-अर्थी पहचान बनाए रखी। यह जटिल अंत्येष्टि कला यह स्पष्ट करती है कि भौतिक संस्कृति का उपयोग केवल धन-संपदा के प्रदर्शन हेतु ही नहीं, बल्कि छठी शताब्दी के उत्तर चीन के गतिशील व बहु-साँस्कृतिक परिवेश के अनुकूल पहचान के सक्रिय निर्माण हेतु एक माध्यम के रूप में भी किया गया था।

3.2.4 निर्मित पहचान (Constructed Identity)

मध्य एशिया और स्थानीय समुदायों के साथ सोग्डियन निवासियों के विविध संबंध, तथा कलात्मक व अंत्येष्टि रीति-रिवाजों की विस्तृत श्रृंखला (जैसे मध्य एशियाई अभिप्रायों के साथ संयुक्त चीनी समाधि परंपराएँ), पहचान-निर्माण की उस सक्रिय प्रक्रिया का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो संकीर्ण क्षेत्रीय निष्ठाओं से परे जाती है। सोग्डियनों ने अनिवार्य मध्यस्थों के रूप में कार्य किया, जिन्होंने न केवल भौतिक वस्तुओं का बल्कि विचारों, सेवाओं और परंपराओं का भी संचरण किया, जो व्यापारिक नेटवर्क के भीतर उनकी परस्पर-संबद्ध और महत्त्वपूर्ण भूमिका को परिलक्षित करता है।

3.3 भौतिक संस्कृति एवं क्षेत्रीय प्रभाव (Material Culture and Regional Impact)

प्राचीन वाणिज्य का प्रभाव तीन भौगोलिक दृष्टि से भिन्न क्षेत्रों—साम्राज्यीय सीमाओं से परे यूरोप, अफ्रीका (सहारा एवं पूर्वी तट), तथा एशिया—की भौतिक संस्कृति और क्षेत्रीय जन-जीवन में स्पष्ट रूप से प्रलेखित है। यह प्रभाव रोमन वाणिज्यिक तंत्र की व्यापकता के साथ-साथ विलासिता एवं दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के पारस्परिक विनिमय को उजागर करता है।

3.3.1 "स्वतंत्र जर्मनी" (यूरोप) में रोमन आयात (Roman Imports in "Free Germany" [Europe])

यूरोप में रोमन व्यापारिक प्रभाव साम्राज्य की औपचारिक सीमाओं के पार "स्वतंत्र जर्मनी" (Free Germany) तक विस्तृत था, जिसके अंतर्गत स्कैंडिनेविया, लातविया, पोलैंड और दक्षिणी रूस के क्षेत्र शामिल थे। इन क्षेत्रों से जुड़ने वाला मुख्य व्यापारिक पथ 'अंबर मार्ग' (Amber route) था, जो दान्यूब सीमा पर स्थित कार्नंटम (Carnuntum) को बाल्टिक सागर तट से जोड़ता था। यद्यपि प्रारंभिक काल में यह व्यापार पूरी तरह अनियंत्रित था, किंतु 173 ईस्वी के पश्चात

सम्राट मार्कस ऑरेलियस ने जर्मन जनजातियों के साथ होने वाले व्यापार के लिए निश्चित स्थल निर्धारित कर दिए।

रोमन आयातों में मुख्य रूप से काँस्य के पात्र, उपकरण और काँच का सामान शामिल था। इस क्षेत्र में हुए पुरातात्विक उत्खननों से "स्वतंत्र जर्मनी" में काँस्य के 850 से अधिक बर्तन प्राप्त हुए हैं, जिनमें से लगभग आधे जुटलैंड (Jutland) और बाल्टिक द्वीपों में केंद्रित हैं; इनमें 'हेमूर' (Hemmoor) बाल्टी और 'वेस्टलैंड' (Westland) काँस्य पात्र प्रमुख हैं। यद्यपि प्रथम एवं प्रारंभिक दूसरी शताब्दी ईस्वी का काँच का सामान तुलनात्मक रूप से दुर्लभ था (केवल 14 टुकड़े प्राप्त हुए हैं), फिर भी 'धारीदार या स्तंभदार कटोरे' (ribbed or pillared bowls) पर्याप्त संख्या में मिले हैं।

भौतिक संस्कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण साक्ष्य पोमेरेनिया के 'लुबसॉ समूह की सरदार-समाधियों' (Chieftains' Graves of the Lübsow group) से प्राप्त होता है। इन समाधियों में दफ़नाए गए सरदारों के साथ भोजन एवं मदिरा-पान के विशिष्ट रोमन विलासिता पात्र—जैसे चाँदी एवं काँच के चषक, काँस्य की मदिरा-बाल्टियाँ, थालियाँ, सुराहियाँ और छलनियाँ—रखे गए थे। इन दुर्लभ एवं विदेशी वस्तुओं की उपस्थिति मृतक की उच्च सामाजिक स्थिति को दर्शाने का माध्यम बनती थी। इसके अतिरिक्त, रोमन सिक्कों का भी व्यापक संचलन था, जहाँ अंततः सोने ने चाँदी का स्थान लेकर मुख्य मुद्रा एवं संचित धन का रूप धारण कर लिया। तीसरी और चौथी शताब्दी ईस्वी के सिक्कों के ढेर (hoards) संभवतः रोमन साम्राज्य के विरुद्ध सैन्य विजयों या सफल छापों के परिणामस्वरूप प्राप्त हुए थे।

3.3.2 अफ्रीका (सहारा एवं पूर्वी तट) में रोमन संपर्क (Roman Contact in Africa [Sahara and East Coast])

अफ्रीका में रोमन व्यापार दो प्रमुख भौगोलिक क्षेत्रों—सहारा मरुस्थलीय क्षेत्र और पूर्वी तट—तक विस्तृत था। सहारा क्षेत्र में रोमन प्रभाव ने उत्तर की ओर तटीय नगरों तक हाथीदाँत के थल परिवहन को सुगम बनाया। फेज़ान (Fezzan) क्षेत्र में हुए उत्खननों में आयातित रोमन एम्फोरा पात्र, काँच की वस्तुएँ, मिट्टी के चिराग और टेरा सिगिलाटा (terra sigillata) मृद्भांड प्राप्त हुए हैं। इसका एक विशिष्ट उदाहरण हॉगर (Hoggar) स्थित 'टिन हिनन' (Tin Hinan) के प्रासाद में मिला एक रोमन दीपक है।

पूर्वी तटीय और लाल सागर क्षेत्र में 'अडुलिस' (Adulis) का बंदरगाह अफ्रीकी और प्राच्य (पूर्वी) वाणिज्य के एक प्रमुख केंद्र के रूप में कार्य करता था। विशेष कानूनी अधिकार प्राप्त अडुलिस

बंदरगाह पर भारत से आयातित सोना और चाँदी के पात्र, लोहा और महीन मलमल की खेप पहुँचती थी। यद्यपि प्रारंभिक उत्खनन पेरिप्लस के काल (लगभग 10 ईसा पूर्व से 360 ईस्वी) के संपर्कों का संकेत देते हैं, किंतु अडुलिस और अक्सुम (Aksum) से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य मुख्य रूप से उत्तर-रोमन/बायज़ेंटाइन काल (5वीं से 7वीं शताब्दी ईस्वी) से संबंधित हैं, जहाँ अक्सुमाइट निर्मित मृद्भांडों की प्रधानता उस साम्राज्य के बढ़ते प्रभुत्व को दर्शाती है।

3.3.3 एशिया में अंतर-साँस्कृतिक भौतिक प्रभाव (Cross-Cultural Material Impact in Asia)

एशियाई संदर्भ में यह व्यापार रोम के प्रतिकूल भारी व्यापार घाटे द्वारा चिह्नित था। प्लिनी द एल्डर जैसे शास्त्रीय लेखकों ने उल्लेख किया कि भारत प्रतिवर्ष रोमन साम्राज्य की संपत्ति से 5 करोड़ सेस्टरसेस अवशोषित कर लेता था और वही वस्तुएँ सौ गुना अधिक मूल्य पर वापस बेचता था।

रोम से आयातित मुख्य वस्तुओं में बड़ी मात्रा में सोने और चाँदी के सिक्के शामिल थे, जो विशेष रूप से दक्षिण भारत में धातु-पिंड (bullion) के रूप में प्रयुक्त होते थे। इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट रोमन पात्र भी आयात किए जाते थे; यद्यपि पहले जिन्हें रोमन एम्फोरा माना जाता था, उनमें से कई (जैसे टॉरपीडो जार) अब मेसोपोटेमियाई उद्गम के माने जाते हैं, जिनका उपयोग संभवतः फ़ारसी मदिरा के परिवहन हेतु होता था।

पश्चिम की ओर निर्यात होने वाली भारतीय विलासिता की वस्तुओं में काली मिर्च, मोती, हाथीदाँत, रेशम और बहुमूल्य रत्न अत्यंत लोकप्रिय थे। पश्चिम की ओर इन विलासिता की वस्तुओं के परिवहन का एक ज्वलंत उदाहरण दक्कन में निर्मित हाथीदाँत की 'लक्ष्मी-प्रतिमा' है, जो पोंपेई (इटली) के पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त हुई है। स्थानीय भारतीय शिल्पकारों ने भी पश्चिमी कलात्मक विषयों का अनुकरण किया; इसका एक उदाहरण अरिकामेडु से प्राप्त मृद्भांड के टुकड़े पर उकेरी गई एक भारतीय महिला की अकीक-मुद्रा (intaglio) है।

इसके अतिरिक्त, सम्राट क्लॉडियस के समय से रोमनों के ज्ञान में आया श्रीलंका (तप्रोबेन/ताम्रापर्णी) एक प्रमुख वाणिज्यिक केंद्र के रूप में उभरा, जहाँ चौथी और पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के उत्तर-रोमन काँस्य एवं ताँबे के दसियों हज़ार सिक्के, तथा बाद के काल में सासानी एवं बायज़ेंटाइन सिक्के प्रचुर मात्रा में एकत्र हुए। वहीं दूसरी ओर, चीन ने अपने रेशम और लाक्षा-गृह (lacquerware) के बदले में 'दा छिन' (रोमन साम्राज्य) से सोना, चाँदी, मूँगा, अंबर और काँच जैसी विलासिता की वस्तुएँ प्राप्त कीं, जिन्हें होऊ-हान-शू (Hou-han-shu) में "विदेशी राज्यों की विविध एवं दुर्लभ वस्तुएँ" कहा गया है।

3.4 विचारधारात्मक एवं साहित्यिक रूपांतरण (Ideological and Literary Transformations)

यूरेशियाई महाद्वीप के विशाल व्यापारिक नेटवर्क्स ने केवल भौतिक वस्तुओं का ही नहीं, बल्कि विभिन्न साँस्कृतिक क्षेत्रों के मध्य विचारों, जन-सामान्य और धार्मिक विश्वास-प्रणालियों के सम्मिश्रण से उदित होने वाले मौलिक **विचारधारात्मक एवं साहित्यिक रूपांतरणों** का भी संचालन किया।

3.4.1 धार्मिक प्रसार एवं संस्थागत रूपांतरण (Religious Diffusion and Institutional Transformation)

उत्तर-प्राचीन तथा उत्तर-शास्त्रीय काल में रेशम व्यापार की व्यवस्था यूरेशिया के तीन प्रमुख धार्मिक आंदोलनों के विकास के साथ समानांतर रूप से जुड़ी हुई थी: पहला, चीन और भारत के मध्य बौद्ध धर्म का आवागमन; दूसरा, बायज़ेंटाइन साम्राज्य और पश्चिमी यूरोप के बीच ईसाइयत का विस्तार; तथा तीसरा, इस्लामिक संसार के भीतर धर्म का द्रुत प्रसार। इस पूरे परिदृश्य में मध्य एशिया एक अत्यंत निर्णायक चौराहे के रूप में उभरा, जहाँ बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम, मनिचैज्म और पारसी धर्म के अनुयायियों के बीच रेशम का व्यापक विनिमय हुआ। इस व्यापारिक अवसंरचना ने धार्मिक प्रचारकों को असाधारण गतिशीलता प्रदान की, जिससे बौद्ध प्रचारक, तीर्थयात्री और व्यापारी भारत तथा मध्य एशिया के बीच रेशम के मुख्य संवाहक बन गए। यह प्रभाव केवल बौद्ध जगत तक ही सीमित नहीं था; ईसाई संसार में भी संतों के अवशेषों की पूजा (cult of saints) का उदय हुआ, जिसने संतों की पवित्र अस्थियों, क्रूस के टुकड़ों और अन्य पवित्र अवशेषों के व्यापार को जन्म दिया। यह प्रवृत्ति एशियाई क्षेत्रों में प्रचलित भक्ति-प्रथाओं का ही प्रतिबिंब थी। परिणामस्वरूप, यूरोपीय ईसाइयों ने सुदूर पूर्व से आने वाले विलासिता के रेशमी वस्त्रों की अत्यधिक माँग की, जिसके कारण सासानी, मध्य एशियाई और इस्लामिक मूल के वस्त्र अक्सर पूरे यूरोप के चर्च-कोषों (church treasuries) में सुशोभित पाए गए।

विस्तारित होते इस्लामिक संसार में रेशम के नए बाजारों का निर्माण—जो एंटीओच पर लैटिन अधिकार जैसे भू-राजनीतिक परिवर्तनों द्वारा सुलभ हुआ—यह सुनिश्चित करता था कि इस्लामिक रेशमी वस्त्र यूरोपीय चर्चों तक पहुँचे। धार्मिक संचरण की इस प्रक्रिया के लिए व्यापक अनुकूलन और पुनर्संदर्भीकरण की आवश्यकता थी। क्रमिक प्रसार (diffusion) की सरल अवधारणा से इतर, "लंबी दूरी के संचरण" (long-distance transmission) का मॉडल यह प्रतिपादित करता है कि विशाल दूरियों और पारगमन क्षेत्रों के पार बौद्ध धर्म जैसे मतों के प्रसार में विचारों, प्रतीकों और संस्थाओं का अत्यधिक गहराई से रूपांतरण हुआ। उपमहाद्वीप

के बाहर बौद्ध संस्थाओं का दीर्घकालिक अस्तित्व उनकी इस क्षमता पर निर्भर था कि वे बदलती परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को ढाल सकने वाली एक लचीली प्रणाली के रूप में कार्य कर सकती थीं। आंतरिक रूप से, बौद्ध संघ को प्रारंभिक काल में ही संप्रदाय-भेद और वैचारिक तनावों का सामना करना पड़ा; उदाहरण के लिए, वैशाली में आयोजित 'द्वितीय बौद्ध संगीति' में 'दस नियमों' (दश-वस्तुनि/इंडल्जेंस) से जुड़े सैद्धांतिक व अनुशासनात्मक विवादों ने संघ में विभाजन को जन्म दिया, जो कालांतर में महासांघिक जैसे दार्शनिक संप्रदायों के उदय का कारण बना, जो आगे चलकर महायान दर्शन के अग्रदूत सिद्ध हुए।

3.4.2 साहित्यिक पुनर्रचना एवं राजनीतिक विचारधारा (Literary Reconfiguration and Political Ideology)

ईस्वी सन की प्रारंभिक शताब्दियों के गतिशील राजनीतिक और धार्मिक परिवेश ने प्रमुख धार्मिक ग्रंथों में बड़े वैचारिक परिवर्तनों को प्रेरित किया। महाभारत महाकाव्य की सबसे प्राचीन उपलब्ध पर्व-सूची (जो कुषाण लिपि में लिखित 'स्पिट्ज़र पांडुलिपि' के अंशों में प्राप्त होती है) का परीक्षण यह सिद्ध करता है कि अपने विकास के प्रारंभिक चरण में यह महाकाव्य बाद के उत्तरवर्ती संस्करणों की तुलना में काफी संक्षिप्त था। अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस प्राचीन सूची में **अनुशासनपर्व** (13वाँ पर्व) पूरी तरह अनुपस्थित है। विद्वानों का मानना है कि यह पर्व उत्तरवर्ती काल में जोड़ा गया एक प्रक्षिप्त (बाद में मिलाया गया) हिस्सा या रचना थी, जिसका मुख्य उद्देश्य "समाज के अन्य सभी वर्गों पर ब्राह्मणों की सर्वोच्चता के दावों" का अत्यधिक अतिरंजित रूप से समर्थन करना था।

इस प्रकार के उग्र वैचारिक रुख को पारंपरिक वैदिक सामाजिक पदानुक्रम को चुनौती देने वाले शक्तिशाली शासकों की नीतियों के विरुद्ध एक 'ब्राह्मणवादी प्रतिक्रिया' के रूप में देखा जाता है। इन गैर-ब्राह्मणवादी या श्रमण-समर्थक शासकों में मौर्य सम्राट अशोक सबसे प्रमुख थे, जिन्होंने ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के मध्य से ही एंटीओकस द्वितीय थियोस और टॉलेमी द्वितीय फिलाडेल्पस जैसे हेलेनिस्टिक राजाओं के साथ उच्च-स्तरीय कूटनीतिक संबंध बनाए रखे थे, जो व्यापार पर आधारित व्यापक आर्थिक अंतःक्रिया का संकेत देता है। यद्यपि अशोक ने स्वयं को एक बौद्ध उपासक घोषित किया और बौद्ध तीर्थस्थलों की यात्राएँ कीं, फिर भी उनके सार्वजनिक अभिलेखों ने एक व्यापक 'धम्म'—एक सार्वभौमिक नैतिक आचार संहिता—का प्रचार किया। उन्होंने सभी संप्रदायों के प्रति सहिष्णुता और दानशीलता का समर्थन किया तथा श्रमणों और ब्राह्मणों दोनों को समान रूप से संरक्षण प्रदान किया, जिससे ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती देने वाले आध्यात्मिक आंदोलनों को संस्थागत आधार प्राप्त हुआ। अतः, महाभारत

का साहित्यिक पुनर्गठन और विकास उन वैचारिक संघर्षों को सटीक रूप से प्रतिबिंबित करता है जो अंतर-क्षेत्रीय व्यापार नेटवर्क्स से उत्पन्न व्यापक सामाजिक और राजनीतिक संरक्षण की पृष्ठभूमि में आकार ले रहे थे।

3.5. पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्य: यूरोप, अफ्रीका एवं एशिया में भौतिक प्रवाह (Archaeological and Textual Manifestations: Material Flow across Europe, Africa, and Asia)

3.5.1 भौतिक संस्कृति एवं क्षेत्रीय प्रभाव: यूरोप और अफ्रीका में रोमन निर्यात एवं सीमांत वाणिज्य (Material Culture and Regional Impacts: Roman Exports and Frontier Commerce in Europe and Africa)

साम्राज्यीय सीमाओं से परे रोमन वाणिज्यिक प्रभाव के भौतिक साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि व्यापार अक्सर औपचारिक राजनीतिक सीमाओं का अतिक्रमण कर सुदूर क्षेत्रों तक पहुँचता था। यूरोप के "स्वतंत्र जर्मनी" (Free Germany) क्षेत्र–जो नॉर्वे, स्वीडन, लातविया, पोलैंड और दक्षिणी रूस तक विस्तृत था–में रोमन वस्तुओं का प्रवेश विभिन्न व्यापारिक धमनियों के माध्यम से हुआ। इनमें सबसे प्रमुख 'अंबर मार्ग' (Amber route) था, जो दान्यूब नदी तट पर स्थित कार्नंटम (Carnuntum) से प्रारंभ होकर पोलिश मैदानों को पार करता हुआ बाल्टिक सागर तट तक जाता था। प्रारंभिक काल में इन उत्तरी मार्गों पर व्यापार अनियंत्रित था; इसका प्रमाण सम्राट नीरो के एजेंट जूलियस की बाल्टिक यात्रा से मिलता है जो अंबर प्राप्त करने हेतु भेजी गई थी। हालाँकि, 173 ईस्वी में मार्कोमन्नी जनजाति की पराजय के पश्चात सम्राट मार्कस ऑरेलियस ने इस स्वतंत्रता को सीमित करते हुए केवल निश्चित स्थलों पर ही व्यापार की अनुमति दी।

इस क्षेत्र में प्राप्त पुरातात्विक अवशेष मुख्य रूप से समाधि-स्थल सामग्री में परिलक्षित होते हैं। पोमेरेनिया के 'लुबसॉ समूह की प्रमुखों की समाधियों' (Chieftains' Graves of the Lübsow group) से प्राप्त साक्ष्य दफ़न-रीतियों में एक समान विशिष्टता दर्शाते हैं। इन समाधियों में मृतकों के साथ विशिष्ट रोमन मदिरा-पान पात्र (banqueting vessels)—जैसे चाँदी एवं काँच के चषक, काँस्य की मदिरा-बाल्टियाँ, थालियाँ, सुराहियाँ, छलनियाँ और 'सॉसपैन'—तथा सौंदर्य सामग्रियाँ (दर्पण व कंबियाँ) रखी गई थीं। उल्लेखनीय रूप से, इन आयातों में घिसे-पिटे, मरम्मत किए गए और प्राचीन विरासत बन चुके पात्र भी शामिल थे; इसका एक ज्वलंत साक्ष्य एल. एंसियस डियोडोरस की मुहर वाला काँस्य का पात्र (patera) है, जो दफ़नाए जाने के समय तक एक पुरानी पारिवारिक विरासत बन चुका था।

इसी प्रकार, अफ्रीका में भी रोमन प्रभाव का विस्तार हुआ, जहाँ अल्जीरिया और लीबिया पर अधिकार के पश्चात रोमन राज्य ने 'लाइम्स' (limes) नामक कृत्रिम सीमाओं की प्रणाली विकसित की। सहारा मरुस्थल, विशेष रूप से फेज़ान (Fezzan) क्षेत्र में रोमन उपस्थिति के प्रमाण प्रथम शताब्दी की समाधियों से प्राप्त आयातित एम्फोरा, काँच के बर्तनों, दीपकों और टेरा सिगिलाटा (terra sigillata) पात्रों से मिलते हैं। वहीं पूर्वी अफ्रीकी तट पर 'अडुलिस' (Adulis) का बंदरगाह प्राच्य (पूर्वी) वाणिज्य का एक प्रमुख केंद्र था, जहाँ भारत से सोना-चाँदी के पात्र, लोहा और महीन मलमल आयात की जाती थी। प्रारंभिक रोमन काल में अडुलिस और अक्सुम के साथ संबंध अपेक्षाकृत सीमित थे, किंतु चौथी शताब्दी ईस्वी के पश्चात उत्तर-रोमन काल में बेरेनिके बंदरगाह पर अक्सुमाइट निर्मित वस्तुओं की प्रचुरता उस साम्राज्य के बढ़ते व्यापारिक प्रभुत्व को दर्शाती है।

3.5.2 समुद्री अक्ष और भारतीय विनिमय (The Maritime Axis and the Indian Exchange)

रोमन संसार और एशिया के बीच होने वाले समुद्री व्यापार का विस्तृत प्रलेखन शास्त्रीय ग्रंथों एवं पुरातात्विक उत्खननों दोनों में सुरक्षित है, जो भारत के साथ होने वाले ऐसे द्विपक्षीय विनिमय को उजागर करता है जिसके कारण रोम को भारी वित्तीय घाटे का सामना करना पड़ा।

- **साहित्यिक एवं नियामक ढाँचा :** ग्रीक व्यापारी की मार्गदर्शिका **'पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई'** (PME) पूर्वी व्यापार का व्यापक विवरण प्रस्तुत करती है। यह ग्रंथ अरब सागर को पार करने वाली लंबी दूरी की सीधी यात्राओं के लिए मानसूनी हवाओं के आवधिक ज्ञान की अनिवार्यता पर बल देता है। प्लिनी द एल्डर ने अनुमान व्यक्त किया कि भारत प्रतिवर्ष रोमन साम्राज्य की संपत्ति से 5 करोड़ सेस्टरसेस अवशोषित कर लेता था। इस अत्यधिक लाभदायक किंतु जोखिम भरे व्यापार पर नियंत्रण रखने के लिए रोमन प्रशासन ने कठोर नियम लागू किए थे, जिसमें आयातों पर 25% का अनिवार्य राज्य कर लागू था। पेरिप्लस में लाल सागर के मायोस हॉर्मोस और बेरेनिके जैसे बंदरगाहों के अतिरिक्त कुछ विशेष कार्यों हेतु 'नामित' (designated) बंदरगाहों का उल्लेख मिलता है, जहाँ पश्चिमी व्यापारियों को चुंगी वसूली या सैन्य सुरक्षा जैसी विशेष रियायतें प्राप्त थीं।
- **वस्तुओं का प्रवाह एवं व्यापार असंतुलन :** भारत से पश्चिम की ओर होने वाले निर्यात में मुख्य रूप से मालाबार तट की कम वजन एवं उच्च मूल्य वाली विलासिता की वस्तुएँ शामिल थीं—जैसे मलमल, मोती, हाथीदाँत, रेशमी वस्त्र, दालचीनी, दुर्लभ रंगहीन रत्न (हीरे, नीलम) और कछुए की पीठ का खोल (tortoiseshell)। विशेष रूप से काली

मिर्च की अत्यधिक माँग थी, जिसे रोम में उसके मूल क्रय-मूल्य से सौ गुना अधिक मूल्य पर बेचा जाता था। इसके बदले में, पश्चिम से भारत आने वाली मुख्य वस्तुओं में सोने और चाँदी के सिक्के (मुद्रा), पुखराज (topaz), उत्कृष्ट वस्त्र, अंजन (antimony), मूँगा, कच्चा काँच और ताँबा शामिल थे।

- **मुद्राशास्त्रीय एवं मृद्भांडीय साक्ष्य :** भारतीय उपमहाद्वीप में, विशेष रूप से रत्न व्यापार से जुड़े कोयंबटूर क्षेत्र तथा आंध्र प्रदेश में कृष्णा नदी घाटी से चौथी और पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के रोमन सोने के सिक्कों (solidi) के ढेर प्राप्त हुए हैं, जो निरंतर व्यापार असंतुलन की पुष्टि करते हैं। इन बहुमूल्य सिक्कों का उपयोग सामान्य मुद्रा के रूप में चलाने के बजाय मुख्य रूप से धातु-पिंड (bullion) के रूप में तौलकर विनिमय हेतु किया जाता था। द्विपक्षीय व्यापार का प्रमाण लाल सागर क्षेत्र में भारतीय मृद्भांडों की उपस्थिति से भी मिलता है; उत्तर भारत और चंद्रकेतुगढ़ क्षेत्र से निर्मित 'रूलेटेड पात्र' (Rouletted Ware - RW) तथा 'ऑर्गेनिक ब्लैक पात्र' (Organic Black Ware - OBW) जैसे विशिष्ट भारतीय मृद्भांड मायोस हॉर्मोस और बेरेनिके से प्राप्त हुए हैं। इसके विपरीत, दक्कन के पठार से रोमन मदिरा, तेल और गारम (मत्स्य-चटनी) के परिवहन हेतु प्रयुक्त होने वाले एम्फोरा पात्रों के अवशेष, सिगिलाटा पात्र और काँच का सामान प्राप्त हुआ है, जो ग्रीको-रोमन संसार की व्यापक भौतिक उपस्थिति को सिद्ध करता है।

3.6 सारांश (Summary)

यह इकाई यह अनुशीलन प्रस्तुत करती है कि किस प्रकार भौतिक विनिमय ने यूरेशिया और अफ्रीका के विविध क्षेत्रों में व्यापक साँस्कृतिक संश्लेषण को उत्प्रेरित किया। सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में, अंतर-साँस्कृतिक अंतःक्रिया को केवल एक सरल एवं एकरेखीय 'प्रसार' (diffusion) न मानकर दो पृथक "साँस्कृतिक प्रतिमानों के मध्यवर्ती क्षेत्र" (space between) में नवीन व सृजनात्मक संरचनाओं के निर्माण के रूप में देखा जाता है।

इस प्रक्रिया का एक उत्कृष्ट साक्ष्य उत्तर चीन की सोग्डियन अंत्येष्टि कला (छठी शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्द्ध के पाषाण अवशेष) में दिखाई देता है, जहाँ सोग्डियन, पारसी (ज़ोरोस्ट्रियन) और स्थानीय चीनी प्रतिमाशास्त्र का एक अनूठा सम्मिश्रण प्राप्त होता है। **साबाओ** (sabao) जैसे उच्च वाणिज्यिक एवं प्रशासनिक पदों पर आसीन सोग्डियन आप्रवासियों ने स्थानीय चीनी दफ़न प्रथाओं (जैसे विशाल पाषाण शव-पात्रों के प्रयोग) को अपनाकर तथा अपने पारंपरिक धार्मिक

प्रतीकों (जैसे अग्नि वेदी) को समाहित करके इस संकर पहचान का सचेत रूप से निर्माण किया।

वस्तुओं का यह संचलन साम्राज्यीय सीमाओं के पार सुदूर क्षेत्रों तक फैला हुआ था। 'अंबर मार्ग' के माध्यम से आने वाले रोमन आयातों–जैसे चाँदी के चषक, काँस्य की मदिरा-बाल्टियाँ और काँच की बर्तनों–ने "स्वतंत्र जर्मनी" के 'लुबसॉ समूह' की समाधियों में मृतकों की उच्च सामाजिक स्थिति को परिभाषित करने में केंद्रीय भूमिका निभाई। वहीं समुद्री मार्ग पर होने वाले पूर्वी व्यापार पर रोमन प्रशासन द्वारा 25% का अनिवार्य राज्य कर लागू किया जाता था। प्लिनी द एल्डर जैसे शास्त्रीय लेखकों ने भारत के साथ होने वाले व्यापार में भारी वित्तीय घाटे पर चिंता व्यक्त की, जिसके अंतर्गत रोमन साम्राज्य का सोना और चाँदी प्रचुर मात्रा में धातु-पिंड (बुलियन) के रूप में भारत प्रवाहित होता था। मायोस हॉर्मोस जैसे लाल सागर के बंदरगाहों से प्राप्त भारतीय 'रूलेटेड पात्र' (RW) तथा भारत के अरिकामेडु जैसे तटीय स्थलों से प्राप्त इतालवी निर्मित पात्र इस व्यापक व नियमित वैश्विक वाणिज्यिक विनिमय की पुष्टि करते हैं।

विचारधारात्मक स्तर पर, व्यापारिक नेटवर्क्स ने गहरे धार्मिक और राजनीतिक परिवर्तनों को गति प्रदान की। रेशम जैसी अत्यंत मूल्यवान विलासिता की वस्तु का संचलन यूरेशिया के प्रमुख धार्मिक आंदोलनों के विस्तार से समानांतर रूप से जुड़ा हुआ था। बौद्ध धर्म का प्रसार केवल क्रमिक संपर्क पर आधारित न होकर "लंबी दूरी के संचरण" (long-distance transmission) के मॉडल पर निर्भर था, जिसने विचारों और संस्थाओं के स्थानीय संस्कृतियों के अनुकूल रूपांतरण को अनिवार्य बनाया। बौद्ध संघ को समृद्ध व्यापारियों से भौतिक दान और पुण्य प्राप्त होता था, जिसने व्यापारिक मार्गों पर विशाल मठों और स्तूपों के निर्माण को संभव बनाया। इसके अतिरिक्त, सम्राट अशोक और हेलेनिस्टिक शासकों (जैसे एंटीओकस द्वितीय और टॉलेमी द्वितीय) के बीच के कूटनीतिक संबंध इन संपर्कों के गहरे आर्थिक व राजनीतिक आधार को रेखांकित करते हैं। साहित्यिक क्षेत्र में, महाभारत में अनुशासनपर्व का उत्तरवर्ती प्रक्षेप भी बदलते सामाजिक व आर्थिक संरक्षण के संदर्भ में उदित होने वाले वैचारिक संघर्षों को ही प्रतिबिंबित करता है।

3.7 सहायक सामग्री (Suggested Readings)

- Bonnie Cheng. *'The Space Between: Locating "Culture" in Artistic Exchange'*, Ars Orientalis, Vol. 8, pp. 81 – 120.
- Dieter Schlingloff, *'The Oldest Extant Parvan list of the Mahabharat'*, Journal of the American Oriental Society, Vol. 89. No.2 (April-June 1969), pp.334-338.

- E. Errington et al, eds. The Crossroads of Asia. *Transformation in Image and Symbol in the Art of Ancient Afghanistan and Pakistan*, Ancient India and Iran Trust, 1992.
- Luce Boulnois, Silk Road: Monks, *Warriors and Merchants*, Hong Kong: Odyssey Books, (2015 reprint).
- Marshak B and Rospopova Wall Paintings from a House with a Granary, Panjikent, *The Silk Road Key Papers*, Part 1: The Pre-Islamic Period, Ed. Valerie Hansen, Global Oriental, 2012.

व्यापार एवं साँस्कृतिक विनिमय के प्रमुख कारक : व्यक्ति एवं क्षेत्र
(Agents of trade and cultural Transactions: People and localities)

4.0 अध्ययन के उद्देश्य (Learning Objectives)

इस इकाई के सफलतापूर्वक अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित क्षमताओं को अर्जित करने में सक्षम होंगे–

1. अंतर-साँस्कृतिक अंतःक्रियाओं को प्रारंभ करने और उन्हें निरंतर बनाए रखने में विशिष्ट व्यक्तियों (कारकों)–जिनमें शासक, धार्मिक व्यक्तित्व तथा व्यापारी शामिल हैं–की महत्त्वपूर्ण भूमिका और योगदान का विश्लेषण करने में।
2. यह परीक्षण करने में कि किस प्रकार थल और जल मार्गों पर स्थित विशिष्ट क्षेत्र तथा क्षेत्रीय केंद्र साँस्कृतिक उत्पादन, राजनीतिक सत्ता और व्यापार के केंद्रों के रूप में कार्य करते थे, तथा इसके माध्यम से संचरण के प्रतिमानों को आकार देते थे।
3. कला, साहित्य और धार्मिक परंपराओं में परिलक्षित होने वाले साँस्कृतिक परिवर्तन तथा 'संकरता' (hybridity) के स्वरूप का मूल्यांकन करना, और इसे इन प्रमुख कारकों एवं क्षेत्रों द्वारा प्रदान की गई गतिशीलता व संरक्षण से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ना।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह इकाई उन विविध जन-समुदायों और क्षेत्रों का परिचय प्रस्तुत करती है जिन्होंने प्राचीन काल में भारत को ग्रीको-रोमन संसार, पूर्व एशिया और तिब्बत से जोड़ने वाले व्यापक व्यापारिक एवं साँस्कृतिक विनिमयों में गतिशील कारकों के रूप में कार्य किया। विनिमय को एक अमूर्त प्रक्रिया मानने के बजाय, यह इकाई उन विशिष्ट व्यक्तियों और प्रमुख भौगोलिक स्थलों के महत्त्वपूर्ण योगदान पर विशेष बल देती है जिन्होंने विभिन्न साँस्कृतिक क्षितिजों के पार विचारों, भौतिक सामग्रियों और विश्वास-प्रणालियों के संचरण को मूर्त रूप प्रदान किया।

अंतर-साँस्कृतिक अंतःक्रियाओं में संलग्न मानव कारकों को कई प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, जिनमें प्रभावशाली साम्राज्यीय संरक्षक, धार्मिक प्रचारक और भ्रमणशील व्यापारी शामिल हैं। मौर्य सम्राट अशोक जैसे शासकों ने सीरिया के एंटीओकस द्वितीय थियोस और मिस्र के टॉलेमी द्वितीय फिलाडेल्पस जैसे हेलेनिस्टिक राजाओं के साथ उच्च-स्तरीय

कूटनीतिक संबंधों का उपयोग करते हुए सुदूर नेटवर्क्स की स्थापना की, जिसने साँस्कृतिक विनिमय हेतु एक ठोस आधार प्रदान किया। इसके अतिरिक्त, अशोक ने एशिया, अफ्रीका और यूरोप के विभिन्न देशों में प्रचारकों को भेजकर सद्धम्म के प्रसार में योगदान दिया तथा यात्रियों की सुगम आवाजाही हेतु मार्गों पर कुएँ खुदवाने व विश्रामगृह बनवाने जैसी अवसंरचनात्मक सुविधाओं का विस्तार किया। उत्तरवर्ती काल में, कुषाण सम्राट कनिष्ठ को भी इसी प्रकार सम्मानित किया जाता है, जिनके शासनकाल में बौद्ध कला की इंडो-ग्रीक (गांधार) शैली का व्यापक विकास हुआ और जिन्होंने भारत, मध्य एशिया तथा ईरान को जोड़ने वाले एक विशाल भूभाग पर शासन किया।

धार्मिक और वाणिज्यिक कारक अक्सर एक-दूसरे से आच्छादित (overlapping) नेटवर्क्स का उपयोग करते थे। बौद्ध भिक्षु और प्रचारक–जैसे काश्यप मातंग (मध्य भारत के मूल निवासी, जिन्होंने प्रथम शताब्दी ईस्वी में चीन जाकर 'चवालीस परिच्छेदों वाले सूत्र' का अनुवाद किया) तथा तिब्बती दरबारी थोन-मी संभोट (जिन्होंने तिब्बती लिपि तैयार करने हेतु मगध में अध्ययन किया)–वैचारिक सामग्रियों के लंबी दूरी के संचरण में मुख्य वाहक सिद्ध हुए। दूसरी ओर, वाणिज्यिक विनिमय को विशेषीकृत समूहों द्वारा संचालित किया गया, विशेष रूप से सोग्डियन व्यापारियों द्वारा, जिन्हें बिना किसी निश्चित देश के यायावर व्यापारी के रूप में वर्णित किया गया है और जिन्होंने अंतर-एशियाई मार्गों पर व्यापारिक गतिविधियों का संचालन किया। बौद्ध धर्मग्रंथों में व्यापारियों को ऐसे संरक्षकों के रूप में प्रमुखता से दर्शाया गया है जिन्होंने धार्मिक स्थलों व मठों की स्थापना हेतु आवश्यक संपदा का सृजन किया, जो वाणिज्य और बौद्ध संघ के बीच के गहरे सहजीवन को उजागर करता है।

ये सभी कारक विशिष्ट क्षेत्रों और केंद्रों पर निर्भर थे जो व्यापार तथा अनुवाद के मुख्य धुरियों के रूप में कार्य करते थे।

- **स्थल मार्ग :** उत्तर-पश्चिम में गांधार भारतीय, हेलेनिस्टिक और ईरानी संस्कृतियों के बीच संपर्क का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सीमावर्ती क्षेत्र था। तक्षशिला मध्य एशिया के साथ होने वाले लंबी दूरी के व्यापार के लिए एक प्रमुख वाणिज्यिक केंद्र के रूप में कार्य करता था। इसके अतिरिक्त, ऊपरी सिंधु क्षेत्र के उच्च-पर्वतीय सहायक मार्गों पर भिक्षुओं और गृहस्थ श्रद्धालुओं द्वारा आध्यात्मिक पुण्य प्राप्त करने की आकांक्षा में उकेरे गए हज़ारों शैलचित्र और अभिलेख प्राप्त होते हैं।

- **समुद्री मार्ग :** दक्षिण भारत में अरिकामेडु नगर एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण इंडो-रोमन व्यापारिक केंद्र (emporia) के रूप में कार्य करता था। यहाँ हुए उत्खननों में इतालवी लाल-पालिशदार 'अरेटाइन पात्र' और एम्फोरा जैसी रोमन आयातित वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, जो ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के अंत से तीसरी शताब्दी ईस्वी तक फैले समुद्री संपर्कों की पुष्टि करती हैं। वहीं रोमन संसार की वाणिज्यिक गतिविधियाँ मुख्य रूप से लाल सागर के मायोस हॉर्मोस और बेरेनिके बंदरगाहों पर केंद्रित थीं, जो पूर्व से होने वाले काली मिर्च और सुगंधित द्रव्यों के व्यापार हेतु मुख्य द्वार थे।

सामूहिक रूप से, इन विशिष्ट व्यक्तियों और भौगोलिक स्थलों का अध्ययन 'व्यापारिक समुदाय' (Trade Diaspora) के मॉडल का गहन विश्लेषण संभव बनाता है, जिसके अंतर्गत विशेषीकृत वाणिज्यिक समुदाय विदेशी नगरों में प्रवासियों के रूप में बसकर ऐसे अंतर्संबद्ध नेटवर्क बनाते थे जो साँस्कृतिक सीमाओं को पार करते थे और पुरातात्विक व साहित्यिक साक्ष्यों में दिखाई देने वाले जटिल साँस्कृतिक सम्मिश्रण में योगदान देते थे।

4.2 धार्मिक एवं राजनीतिक सत्ता के कारक (Agents of Religious and Political Authority)

यह खंड उन प्रभावशाली व्यक्तित्वों पर ध्यान केंद्रित करता है जिन्होंने अंतर-साँस्कृतिक विनिमय में उत्प्रेरक के रूप में मुख्य भूमिका निभाई। इन व्यक्तियों में लौकिक शासक (साम्राज्यीय संरक्षक) और आध्यात्मिक नेता (भिक्षु एवं प्रचारक) दोनों शामिल हैं। इन्होंने धार्मिक विचारों और भौतिक संस्कृति के प्रवाह को सक्रिय रूप से प्रायोजित, निर्देशित और कभी-कभी नियंत्रित किया। इनके कार्यों ने विविध साँस्कृतिक क्षितिजों के पार विचारों, सामग्रियों और विश्वास-प्रणालियों के संचरण हेतु आवश्यक नेटवर्क्स को स्थापित और बनाए रखा।

4.2.1 शासक एवं साम्राज्यीय संरक्षक (Rulers and Imperial Patrons)

धार्मिक नेटवर्क्स के विस्तार और सुदृढ़ीकरण में राजकीय संरक्षण ने निर्णायक भूमिका निभाई। सम्राटों ने भिक्षुओं की गतिशीलता को सुगम बनाने तथा मठवासी विकास हेतु संसाधन जुटाने के लिए अपनी राजनीतिक और भौतिक क्षमताओं का उपयोग किया।

अशोक एवं मौर्य नेटवर्क (Aśoka and Mauryan Networks)

मौर्य सम्राट अशोक (लगभग 273–236 ईसा पूर्व) धार्मिक संरक्षण के इतिहास में एक युगगामी व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उन्हें बौद्ध धर्म के प्रथम महान शाही संरक्षक के रूप में देखा जाता है। यह उनके व्यवस्थित प्रयासों का ही परिणाम था कि बौद्ध धर्म ने भारत और

विदेशों में एक प्रमुख स्थान प्राप्त किया। उत्तराधिकार के विवादित दौर के पश्चात अशोक का शासनकाल लगभग 270 ईसा पूर्व में प्रारंभ हुआ। पालि अनुश्रुतियाँ उनके पिता बिन्दुसार की मृत्यु और अशोक के औपचारिक राज्याभिषेक के बीच चार वर्ष के अंतराल की ओर संकेत करती हैं। बौद्ध साहित्यिक स्रोत अशोक के प्रारंभिक जीवन में उनके उग्र स्वभाव का वर्णन करते हैं, जिसके कारण उन्हें 'चण्डाशोक' (उग्र अशोक) भी कहा गया।

- **रूपांतरण एवं धम्मविजय (The Transformation and Dhammavijaya):** अशोक के जीवन का सबसे बड़ा मोड़ कलिंग (आधुनिक ओडिशा) पर आक्रमण था। उनके 13वें शिलालेख से पुष्टि होती है कि यह आक्रमण उनके राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में हुआ था। इस युद्ध में हज़ारों लोग मारे गए और हज़ारों को बंदी बना लिया गया। युद्ध से हुए इस भारी जन-धन के विनाश से अत्यंत व्यथित होकर अशोक ने भविष्य के सभी सैन्य अभियानों का परित्याग कर दिया। इसके स्थान पर उन्होंने 'धम्मविजय' (धार्मिक विजय) का मार्ग चुना। उन्होंने अपनी प्रजा तथा राज्य की सीमाओं से बाहर के लोगों के बीच एक नवीन जीवन-शैली का प्रसार करने का प्रयास किया, जिसका मुख्य उद्देश्य उनमें धर्म और निष्ठा के प्रति प्रेम जागृत करना था।

अशोक ने 'धम्म' को अत्यंत व्यापक संदर्भ में परिभाषित किया, जिसके अंतर्गत व्यक्तिगत नैतिकता, सामाजिक नीतिशास्त्र और धार्मिक निष्ठा शामिल थी। उनके मूल सिद्धांतों में करुणा, दानशीलता, सत्यवादिता और शुचिता प्रमुख थे। ये नैतिक अवधारणाएँ विभिन्न परंपराओं के मूल्यों से ग्रहण की गई थीं, जिनमें पारंपरिक ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण तथा श्रमण परंपराओं (बौद्ध, जैन और संभवतः आजीविक) के मूल्य शामिल थे। वे चाहते थे कि लोग सत्य का पालन, संयम, दया, दान, पवित्रता, मृदुता, तथा बड़ों व गुरुओं के प्रति सम्मान एवं आज्ञाकारिता जैसे नैतिक गुणों का विकास करें। उनके प्रमुख शिलालेख 'धम्मदान' (धर्म का दान) को दासों व सेवकों के प्रति अच्छे व्यवहार, माता-पिता की आज्ञाकारिता, तथा मित्रों, परिचितों, संबंधियों, श्रमणों और ब्राह्मणों के प्रति दानशीलता के रूप में परिभाषित करते हैं।

- **धार्मिक संरक्षण एवं सहिष्णुता (Religious Patronage and Tolerance):** अशोक एक समर्पित बौद्ध थे। अपने लघु शिलालेखों के चौदह रूपांतरणों में उन्होंने स्वयं को स्पष्ट रूप से एक 'बौद्ध उपासक' (गृहस्थ अनुयायी) के रूप में निरूपित किया है। अपने भाब्रू (बैराठ) शिलालेख में उन्होंने बुद्ध, धम्म और संघ के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा व्यक्त की। उन्होंने बौद्ध पवित्र स्थलों की तीर्थयात्राएँ भी कीं। अपने शासनकाल के बीसवें वर्ष में उन्होंने लुंबिनी उद्यान की यात्रा की, जहाँ बुद्ध का जन्म हुआ था। इस यात्रा की

स्मृति में उन्होंने वहाँ एक अभिलेख-युक्त स्तम्भ स्थापित करवाया तथा स्थानीय निवासियों को राजकीय करों से छूट प्रदान की। इसके अतिरिक्त, उन्होंने बोधगया और सारनाथ की भी यात्राएँ कीं, जो क्रमशः बुद्ध के सम्बोधि और प्रथम धर्मोपदेश (धर्मचक्रप्रवर्तन) के ऐतिहासिक स्थल थे।

तथापि, अशोक का संरक्षण केवल बौद्ध संघ तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने सभी धार्मिक संप्रदायों और पंथों के प्रति सहिष्णुता की वकालत की। उन्होंने श्रमणों, ब्राह्मणों, आजीविकों और जैनों जैसे सभी निष्ठावान साधुओं के प्रति उदारता को प्रोत्साहित किया। उनके अभिलेखों में बराबर की पहाड़ियों में आजीविकों को गुफाएँ दान में देने का उल्लेख मिलता है। उन्होंने अपनी प्रजा को ऐसे 'धम्म-समारोहों' के आयोजन हेतु प्रेरित किया जो श्रमणों और ब्राह्मणों को दान देने को बढ़ावा देते थे। संप्रदायवादी वाद-विवादों के विरुद्ध उनका निर्देश संभवतः शाही संरक्षण प्राप्त करने के लिए श्रमणों और ब्राह्मणों के बीच चलने वाली तीव्र प्रतिस्पर्धा को दर्शाता है। वे अपने व्यक्तिगत बौद्ध विश्वास और राज्य के आधिकारिक धम्म (सामान्य नैतिकता) के बीच एक स्पष्ट संतुलन बनाए रखते थे।

- **कूटनीतिक एवं अवसंरचनात्मक नेटवर्क (Diplomatic and Infrastructural Networks):** अशोक के राजनीतिक नेटवर्क ने बौद्ध संस्थाओं के प्रसार को एक सशक्त गति प्रदान की। इस काल में बौद्ध धर्म की संवृद्धि केवल राज्य के संरक्षण पर ही निर्भर नहीं थी, बल्कि तत्कालीन स्थिर राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से भी संचालित थी।

    1. **साम्राज्यीय अवसंरचना :** अशोक ने मौर्य साम्राज्य के संचार नेटवर्क का सक्रिय रूप से रखरखाव और विस्तार किया। उन्होंने लंबी दूरी के व्यापारिक एवं यात्रा मार्गों पर छायादार वृक्ष लगवाए तथा मनुष्यों व पशुओं के पेयजल हेतु कुएँ खुदवाए। उन्होंने प्रत्येक नौ मील की दूरी पर विश्रामगृहों के निर्माण का आदेश दिया। उनके शिलालेख साम्राज्य की बाहरी सीमाओं पर स्थित चट्टानों और स्तंभों पर उत्कीर्ण कराए गए, जो सामान्यतः मुख्य राजमार्गों अथवा तीर्थस्थलों पर स्थित थे। व्यापारिक मार्गों के चौराहों और सीमावर्ती क्षेत्रों में इन शिलालेखों का वितरण एक विस्तृत एवं सुव्यवस्थित प्रशासनिक तंत्र का साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

2. **कूटनीतिक प्रसार :** अशोक की कूटनीतिक पहलों ने अंतरराष्ट्रीय संपर्कों के क्षेत्र का अभूतपूर्व विस्तार किया। अपने प्रमुख शिलालेखों में वे अपने समकालीन पाँच हेलेनिस्टिक (यूनानी) राजाओं का उल्लेख करते हैं। इस सूची में शामिल हैं–

   - सीरिया के राजा एंटीओकस द्वितीय थियोस (Antiochos II Theos)
   - मिस्र के राजा टॉलेमी द्वितीय फिलाडेल्फस (Tulamaya / Ptolemy II)
   - मेसिडोनिया के राजा एंटीगोनस गोनाटास (Antikini / Antigonos Gonatas)
   - उत्तरी अफ्रीका में साइरीन के राजा मगस (Maka / Magas)
   - एपिरस के राजा अलेक्जेंडर (Alikasudara / Alexander of Epirus)

यद्यपि इसके प्रत्यक्ष पुरातात्विक प्रमाण सीमित हैं, फिर भी यह मानना तर्कसंगत है कि इस "उच्च-स्तरीय कूटनीतिक निकटता" का एक व्यावहारिक आधार व्यापारिक विनिमय में निहित था। इन कूटनीतिक संपर्कों ने मौर्य काल और हेलेनिस्टिक राजाओं के बीच एक दृढ़ समकालिकता (synchronism) स्थापित की, जो भारतीय इतिहास के कालक्रम की आधारशिला बनी।

बौद्ध साहित्यिक स्रोतों का दावा है कि अशोक ने विभिन्न देशों में धार्मिक दूत भेजे। इनमें यवनों (आयोका यूनानी), गांधार और कश्मीर के क्षेत्रों में भेजे गए अभियान शामिल थे। ये स्रोत सुदूर दक्षिण में स्थित लंका (श्रीलंका) तथा सुवर्णभूमि (सोने की भूमि, संभवतः मलय प्रायद्वीप व सुमात्रा) जैसे क्षेत्रों का भी उल्लेख करते हैं। महावंस जैसी पालि अनुश्रुतियों में विशेष रूप से श्रीलंका में भेजे गए धर्म-अभियान का विवरण मिलता है, जिसका नेतृत्व अशोक के पुत्र थेर महिंद (महेंद्र) और पुत्री संघमित्ता (संघमित्रा) ने किया था। श्रीलंका के राजा देवानामप्रिय तिस्स इस संदेश से अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया, जिससे वहाँ बौद्ध संघ की स्थापना हुई तथा बोधि वृक्ष की एक शाखा का वहाँ रोपण संभव हुआ।

तक्षशिला के 'धर्मराजिक स्तूप' और स्वात घाटी के 'बुतकारा ।' की नींव अक्सर मौर्य काल से जोड़ी जाती है। यद्यपि इन स्मारकों पर अशोक के सीधे अभिलेख नहीं मिले हैं, फिर भी मनसेहरा और शहबाज़गढ़ी में खरोष्ठी लिपि में उकेरे गए अशोक के शिलालेख उत्तर-पश्चिम में मौर्य साम्राज्य की दृढ़ उपस्थिति की पुष्टि करते हैं। इन राजनीतिक और धार्मिक गतिशीलताओं ने बौद्ध संस्थाओं के दीर्घकालिक विस्तार हेतु वह पृष्ठभूमि तैयार की जो मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद भी अक्षुण्ण रही।

कुषाण शासक एवं व्यापारिक एकता (Kuṣāṇa Rulers and Trade Unity)

कुषाण साम्राज्य ने यूरेशियाई इतिहास में एक प्रमुख शक्ति के रूप में कार्य किया तथा अंतर-साँस्कृतिक विनिमय एवं धार्मिक संचरण को तीव्र करने में केंद्रीय भूमिका निभाई। कुषाण यूए-ची (Yuezhi) जाति की एक शाखा से संबंधित थे, जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में अन्य यायावर समूहों के दबाव के कारण पूर्वी मध्य एशिया से बैक्ट्रिया की ओर स्थानांतरित हुई थी। चीनी स्रोतों में 'कुई-शुआंग' (Guishuang) के नाम से जाने जाने वाले इस कबीले ने बाद में यूए-ची के चार अन्य कबीलों को अपने अधीन करके क्षेत्रीय विस्तार के माध्यम से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

- **प्रारंभिक विस्तार एवं साम्राज्यीय नियंत्रण (Early Expansion and Imperial Control):** प्रारंभिक कुषाणों ने इंडो-ग्रीक और शक शासकों के समान ही दक्षिण एशिया के उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों में प्रवेश किया। कुजुल कडफिसेस ने कुषाण राजवंश की नींव रखी। ईस्वी सन की प्रथम शताब्दी के मध्य तक उन्होंने हिंदू कुश पर्वतमाला को पार करके गांधार, स्वात और तक्षशिला तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। इस दौरान उनका शासन इंडो-पार्थियन शासक गोंडोफर्नीज़ के समकालीन था। कुजुल कडफिसेस ने अस्सी वर्ष से अधिक की आयु तक शासन किया तथा इंडो-पार्थियनों, काबुल घाटी, पुष्कलावती और गांधार के क्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त किया। उन्होंने "धम्मठिद कुषण यबुग" (धर्मात्मा कुषाण सरदार) तथा "महाराजस राजातिराजस" जैसी उच्च उपाधियाँ धारण कीं। उनके सिक्के काबुल घाटी के अंतिम इंडो-ग्रीक शासक हर्मायस के सिक्कों के रूप में ढाले गए थे।

कनिष्ठ के शासनकाल में यह साम्राज्य अपनी क्षेत्रीय पराकाष्ठा पर पहुँचा, जिनका शासन संभवतः दूसरी शताब्दी ईस्वी के प्रारंभ में शुरू हुआ था। उनका साम्राज्य अमु दरिया (ऑक्सस) बेसिन से लेकर उत्तरी भारत तक फैला हुआ था। कुषाण साम्राज्य ने उत्तरी मार्ग (उत्तरापथ) के मुख्य केंद्रों को बैक्ट्रिया से लेकर गंगा के डेल्टा तक प्रभावी रूप से एकीकृत कर दिया। इस मुख्य धमनी पर नियंत्रण स्थापित होने से व्यापारियों और भिक्षुओं का दक्षिण एशिया, मध्य एशिया और पूर्व एशिया के बीच लंबी दूरी का आवागमन अत्यंत सुगम हो गया।

उत्तरी अफगानिस्तान से प्राप्त रबातक अभिलेख यह दावा करता है कि कनिष्ठ ने साकेत, कौशांबी, पाटलिपुत्र और श्री चंपा जैसे नगरों पर विजय प्राप्त की थी। ऑक्सस बेसिन से गंगा डेल्टा तक के इस नेटवर्क का प्रशासन करके कुषाणों ने उत्तरापथ के प्रमुख व्यापारिक केंद्रों को

एक सूत्र में पिरोया। चीनी इतिहासकारों ने कुषाण राजवंश को एक "अत्यंत शक्तिशाली साम्राज्य" के रूप में वर्णित किया है, जिनके साथ युद्ध करने वाले चीनी सेनापतियों को भी अक्सर सफलता नहीं मिलती थी।

- **व्यापार एवं आर्थिक समृद्धि (Trade and Economic Prosperity):** कुषाण काल (पहली से तीसरी शताब्दी ईस्वी) व्यापार और साँस्कृतिक विनिमय के अनुकूल नीतियों द्वारा चिह्नित था। थल व्यापारिक मार्गों की स्थिरता ने अत्यधिक अधिशेष संपदा का सृजन किया, जिसका उपयोग धार्मिक संस्थाओं को समर्थन देने में किया गया। कुषाण साम्राज्य की आर्थिक शक्ति उच्च-मूल्य तथा कम-वजन वाली विलासिता की वस्तुओं के लंबी दूरी के व्यापार पर निर्भर थी। इन वस्तुओं में शामिल थीं:
    - चीन से आने वाला रेशम।
    - खोटान से आने वाला नीलमणि (जेड)।
    - उत्तर-पूर्वी अफगानिस्तान से प्राप्त लाजवर्द (लैपिस लाजुली)।
    - चीनियों द्वारा अत्यधिक माँगे जाने वाले सोना और चाँदी, जो कुषाण क्षेत्र से होकर कीमती धातुओं के प्रवाह को दर्शाते हैं।

पारगमन व्यापार में कुषाणों की भागीदारी का एक प्रमुख साक्ष्य बेग्राम (प्राचीन कपिशा) से प्राप्त हुआ है, जो उत्तरी भारत को मध्य एशिया से जोड़ने वाले मार्ग पर स्थित एक प्रमुख नगर था। यहाँ एक विशाल भवन (संभवतः राजप्रासाद) के दो कक्षों से पश्चिम, पूर्व एशिया और भारत से आई "सुंदर और मूल्यवान विदेशी कलाकृतियों" का एक विशाल संग्रह मिला है। ये कक्ष संभवतः एक साम्राज्यीय चुंगी कार्यालय (customs depository) के रूप में कार्य करते थे, जहाँ से गुज़रने वाले कारवानों से एकत्र किया गया कर संग्रहित किया जाता था। इससे यह संकेत मिलता है कि रेशम मार्ग से गुज़रने वाले चीनी व्यापारियों को भी कुषाण क्षेत्र से निकलने के लिए ऐसा ही चुंगी कर देना पड़ता था।

- **धार्मिक संरक्षण एवं साँस्कृतिक संश्लेषण (Religious Patronage and Cultural Synthesis):** उत्तरी बौद्ध परंपराओं में कनिष्ठ को अत्यंत पूजनीय स्थान प्राप्त है और उन्हें अक्सर 'द्वितीय अशोक' के रूप में देखा जाता है। उन्हें पुरुषपुर (पेशावर) में निर्मित विशाल 'शाह-जी-की-ढेरी' स्तूप तथा पेशावर के एक प्रमुख महाविहार के निर्माण का श्रेय दिया जाता है।

तथापि, कनिष्ठ की धार्मिक नीति अत्यंत व्यापक और उदार थी। उनके सिक्कों पर यूनानी, ईरानी और भारतीय देवी-देवताओं का अंकन मिलता है, जो उनके बहु-धार्मिक संरक्षण को सिद्ध करता है। कनिष्ठ के शासनकाल से पूर्व या उनके बाद के कुषाण सिक्कों पर बुद्ध की आकृति का प्रयोग सामान्यतः नहीं देखा जाता, जिससे यह स्पष्ट होता है कि बुद्ध उनके साम्राज्य में सैन्य विजय, समृद्धि और वैधता को निरूपित करने वाले अनेक देवताओं में से एक थे। बौद्ध धर्म को कनिष्ठ द्वारा दिया गया समर्थन एक रणनीतिक राजनीतिक पहल भी हो सकता था, जिसका उद्देश्य अपने विशाल साम्राज्य में विविध समूहों को दान देकर स्वयं को एक 'चक्रवर्ती' (सार्वभौमिक राजा) के रूप में स्थापित करना था।

कुषाण साम्राज्य ईरानी, यूनानी, शक और भारतीय प्रभावों के मिलन का परिणाम था, जिसने संकर साँस्कृतिक अभिव्यक्तियों को जन्म दिया। कुषाण शासन के अधीन बौद्ध कला (विशेष रूप से गांधार शैली) और साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। इसी काल में महायान बौद्ध धर्म जैसी धाराओं का उदय हुआ; कनिष्ठ के उत्तराधिकारी हुविष्क का समय महायान परंपरा के विकास के लिए एक अत्यंत निर्णायक काल माना जाता है।

बाद के कुषाण शासकों में 'भारतीयकरण' की ओर झुकाव स्पष्ट दिखाई देता है। वासुदेव का नाम स्वयं एक वैष्णव नाम है, और उनके सिक्कों पर नंदी (वृषभ) के साथ शिव (ओएशो) की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। कुषाण साम्राज्य ने उत्तरापथ के केंद्रीय नोड्स को नियंत्रित करके यूरेशियाई महाद्वीप पर एक विशाल 'टोल ब्रिज' के रूप में कार्य किया, जिसने न केवल आर्थिक लाभ बल्कि वैचारिक और कलात्मक संश्लेषण को भी गति प्रदान की। कुषाणों की इस साम्राज्यीय विरासत का अनुकरण उत्तरवर्ती गुप्त शासकों ने भी किया, जिन्होंने 'महाराजाधिराज' की उपाधियाँ अपनाईं और कुषाण मॉडलों पर आधारित सिक्के ढाले।

भिक्षु एवं प्रचारक : वैचारिक प्रवाह का निर्देशन (Monks and Missionaries: Directing Ideological Flow)

भिक्षु, भिक्षुणियाँ, तीर्थयात्री और प्रचारक जैसे धार्मिक विशेषज्ञ बौद्ध विचारधारा, साहित्य और भौतिक संस्कृति के सुदूर संचरण में मुख्य कारक सिद्ध हुए। उनकी गतिशीलता, जो अक्सर व्यापारिक और राजनीतिक मार्गों से आच्छादित होती थी, को बुद्ध के उस धर्मोपदेश से प्रामाणिक स्वीकृति मिली थी कि वे "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" धर्म का उपदेश देने के लिए पथ पर विचरण करें। इन व्यक्तियों ने अनुवाद और शिक्षण के माध्यम से बौद्ध परंपराओं को नए परिवेशों और मेजबान संस्कृतियों के अनुकूल ढाला।

- **चीन एवं मध्य एशिया में प्रसार (Transmission to China and Central Asia):** चीन और मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का प्रारंभिक प्रसार मुख्य रूप से विदेशी भिक्षुओं और अनुवादकों पर निर्भर था। विद्वान इस प्रारंभिक चरण को क्रमिक प्रसार के बजाय "लंबी दूरी का संचरण" (long-distance transmission) मानते हैं, जिसमें संपर्क आकस्मिक व रुक-रुक कर होता था और मूल संदर्भ से पृथक विचारों को अपनाया जाता था।

चीन में बौद्ध धर्म के आगमन का पारंपरिक संबंध हान सम्राट मिंगडी (58–76 ईस्वी) के एक स्वप्न से जोड़ा जाता है। लगभग 64 ईस्वी के इस स्वप्न में सम्राट ने एक विशाल स्वर्णिम पुरुष देखा, जिसकी पहचान उनके मंत्रियों ने पश्चिम के 'फो' (बुद्ध) के रूप में की। सम्राट ने भारत और आधुनिक अफगानिस्तान की ओर एक दूत-मंडल भेजा। यह दूत-मंडल कुषाण क्षेत्र से ग्रंथों, प्रतिमाओं और संस्कृत ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद करने वाले पहले दो भारतीय विद्वानों—मातंग कश्यप (She Moteng) और धर्मरत्न (Zhu Falan)—को साथ लेकर लौटा। वे राजधानी लुओयांग में बसे, जहाँ सम्राट ने उनके लिए 'श्वेत अश्व मंदिर' (Baimasi) का निर्माण कराया।

दूसरी शताब्दी ईस्वी के मध्य से चीन में नए धर्म का प्रसार अत्यंत द्रुत गति से हुआ, जिसमें विदेशी अनुवादकों ने केंद्रीय भूमिका निभाई:

- **आन शिगाओ (An Shigao):** एक पार्थियन राजकुमार, जिन्होंने राजसिंहासन का परित्याग करके लगभग 148 ईस्वी में लुओयांग पहुँचकर 35 बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद किया।
- **आन शुआन (An Xuan):** एक ईरानी व्यापारी, जो 181 ईस्वी के आसपास लुओयांग पहुँचे और अनुवाद कार्य में संलग्न हुए।
- **लोकक्षेम (Zhiloujiachen):** एक यूए-ची भिक्षु, जिन्होंने दूसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनेक महायान ग्रंथों का अनुवाद किया।
- **धर्मरक्ष (Zhu Fahu):** डुनहुआंग में बसे एक यूए-ची परिवार के वंशज, जिन्होंने 36 भाषाओं और लिपियों का ज्ञान प्राप्त करके 149 ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया।

बाद के काल में, कुचा में जन्मे महान आचार्य **कुमारजीव** (344–413 ईस्वी) चीनी अनुवादकों में सबसे प्रमुख सिद्ध हुए। उन्होंने कश्मीर और गांधार के आचार्यों से अध्ययन किया और चीनी भाषा में बौद्ध ग्रंथों के अनुवाद हेतु एक अत्यंत सुव्यवस्थित एवं प्रामाणिक भाषा विकसित की।

इसके साथ ही, फ़ाहियान (399–414 ईस्वी), ह्वेनसांग (603–664 ईस्वी) और इत्सिंह (लगभग 670 ईस्वी) जैसे चीनी तीर्थयात्रियों ने प्रामाणिक ग्रंथ प्राप्त करने और पवित्र स्थलों के दर्शन हेतु भारत की कठिन थल व जल यात्राएँ कीं। भिक्षु अक्सर रेशम के संवाहक भी बनते थे; ह्वेनसांग को गाओचांग के राजा द्वारा यात्रा हेतु प्रचुर मात्रा में रेशम प्रदान किया गया था, जिसे उन्होंने भारत के स्तूपों व मठों में दान कर दिया। तांग सम्राटों ने भिक्षुओं को उनकी अनुवाद सेवाओं हेतु 'बैंगनी रंग के वस्त्र' (purple robes) प्रदान किए, जो भिक्षुओं के लिए सर्वोच्च नागरिक सम्मान माना जाता था।

- **दक्षिणी देशों में प्रसार (Transmission to Southern Countries):** बौद्ध भिक्षुओं ने समुद्री मार्गों के माध्यम से दक्षिण के देशों में भी धर्म-प्रसार का नेतृत्व किया। भारतीय भिक्षु गुणवर्मन के प्रयासों से जावा और श्रीविजय (सुमात्रा) के द्वीपों में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ। सातवीं शताब्दी ईस्वी के अंतिम पाद तक श्रीविजय बौद्ध शिक्षा का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण केंद्र बन चुका था, जहाँ एक हज़ार से अधिक भिक्षु मध्यदेश (भारत) के समान ही बौद्ध विषयों का अध्ययन करते थे।

श्रीलंका की अनुश्रुतियों (महावंस) के अनुसार, सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महिंद और पुत्री संघमित्ता के नेतृत्व में श्रीलंका में धर्म-दूत भेजा। वहाँ के राजा देवानामप्रिय तिस्स ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया, जिससे वहाँ संघ की स्थापना हुई। जब रानी अनुला ने प्रब्रज्या (दीक्षा) लेने की इच्छा व्यक्त की, तो अशोक ने संघमित्ता के नेतृत्व में भिक्षुणियों का एक दल भेजा, जो अपने साथ बोधि वृक्ष की एक शाखा भी ले गईं।

- **तिब्बत में स्थापना (Establishment in Tibet):** तिब्बत में बौद्ध धर्म का औपचारिक विकास सम्राट स्रोन्ग-त्सन-गम्पो (627–649/650 ईस्वी) के काल में प्रारंभ हुआ। उन्होंने भारत से ज्ञान और बौद्ध धर्म लाने हेतु अपने मेधावी दरबारी थोन-मी संभोट को मगध भेजा। थोन-मी संभोट ने लगभग 647 ईस्वी में लौटकर भारतीय सिद्धमात्रिका लिपि के आधार पर तिब्बती लिपि तैयार की और संस्कृत ग्रंथों का प्रथम तिब्बती अनुवाद प्रारंभ किया।

बाद में, राजा ठ्री स्रोन्ग-दे-त्सन (754–797 ईस्वी) ने नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य शांत रक्षित को तिब्बत आमंत्रित किया, जिन्होंने बिहार के ओदंतपुरी महाविहार के प्रतिरूप पर तिब्बत के प्रथम बौद्ध मठ **साम-यस** (bSam-yas) की स्थापना की। जब स्थानीय बोन धर्म के अनुयायियों और प्राकृतिक बाधाओं के कारण कार्य रुका, तो शांत रक्षित के सुझाव पर स्वात घाटी के आचार्य

पद्मसंभव को आमंत्रित किया गया, जो तंत्र विद्या में पारंगत थे और जिन्होंने स्थानीय अंधविश्वासों को शांत करके बौद्ध धर्म को दृढ़ता से स्थापित किया।

यह अनुवाद कार्य सम्राट रल-पा-चन (815–838 ईस्वी) के काल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा, जिसके तहत तिब्बती त्रिपिटक (कंजुर और तंजुर) के लगभग 4,500 ग्रंथों का शब्दशः और सटीक अनुवाद किया गया। अंततः 1042 ईस्वी में महान भारतीय विद्वान **अतीश** (अतीशा दीपंकर श्रीज्ञान) के तिब्बत आगमन ने अंतिम महान आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान की, जिससे बौद्ध धर्म ने तिब्बत की धारा में गहरी जड़ें जमाईं।

4.3 वाणिज्यिक विनिमय एवं संकर पहचान के कारक (Agents of Commercial Exchange and Hybrid Identity)

यह खंड इस बात का अन्वेषण करता है कि किस प्रकार व्यापारी, व्यापारिक समूह और उनके द्वारा परिवहन की जाने वाली वस्तुएँ भौतिक व साँस्कृतिक सामग्रियों के प्रवाह के मौलिक वाहक बने, जिन्होंने पूरे यूरेशिया में धार्मिक संरक्षण और कलात्मक संश्लेषण दोनों को गति प्रदान की।

4.3.1 व्यापारी एवं व्यापारिक समुदाय (प्रवासी) मॉडल (Merchants and the Trade Diaspora Model)

अंतर-साँस्कृतिक व्यापारिक नेटवर्क्स के अध्ययन के लिए व्यापारियों और संगठित व्यापारिक समूहों पर ध्यान केंद्रित करना अनिवार्य है, जो भौतिक वस्तुओं के प्रवाह तथा साँस्कृतिक विनिमय के प्राथमिक माध्यम थे। विशेष रूप से नगरीय समाजों के उदय के बाद, अंतर-साँस्कृतिक व्यापार की सबसे प्राचीन और सामान्य संस्थागत व्यवस्था 'व्यापारिक समुदाय' (Trade Diaspora) थी। यह शब्द ग्रीक भाषा के 'बिखराव' (scattering) शब्द से लिया गया है, जो वाणिज्यिक समुदायों के परस्पर संबद्ध नेटवर्क को निरूपित करता है। इसके अंतर्गत वाणिज्यिक विशेषज्ञ अपने गृह समाजों से शारीरिक रूप से पृथक होकर सुदूर नगरों में प्रवासियों के रूप में बसते थे। ये विदेशी व्यापारी मेजबान समाजों की स्थानीय भाषा, रीति-रिवाजों और व्यावसायिक पद्धतियों को सीखते थे तथा अंतर-साँस्कृतिक दलालों (cross-cultural brokers) के रूप में कार्य करते हुए स्थानीय समाजों और अपने मूल क्षेत्रों से आने वाले यात्रा-रत व्यापारियों के बीच वाणिज्यिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देते थे।

व्यापारिक समुदायों की विशेषताएँ (Characteristics of Trade Diasporas)

नगरीय जीवन के प्रारंभ से ही प्रत्येक महाद्वीप में व्यापारिक समुदायों का अस्तित्व रहा है, जो विशेष रूप से कृषि के आविष्कार से लेकर औद्योगिक युग के आगमन के मध्य की अवधि

में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। इन प्रवासियों का दीर्घकालिक अस्तित्व मध्यस्थता की निरंतर आवश्यकताओं पर निर्भर करता था; यद्यपि सदियों की मध्यस्थता ने कई बार साँस्कृतिक अंतरों को कम किया, जिससे कालांतर में विशेषीकृत दलालों की आवश्यकता सीमित होती गई।

इन बस्तियों की एक मुख्य विशेषता मेजबान समुदाय से उनका शारीरिक एवं सामाजिक पृथक्करण था। यह सामाजिक पृथक्करण व्यापारिक समुदाय की साँस्कृतिक अखंडता को बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक था, क्योंकि साँस्कृतिक सीमाओं के अभाव में विदेशी व्यापारियों के एक ही पीढ़ी में स्थानीय समाज में पूरी तरह विलीन होने (assimilation) का जोखिम रहता था, जिससे उनकी दलाल के रूप में कार्य करने की क्षमता समाप्त हो जाती थी। इसके अतिरिक्त, प्रवासी व्यापारियों ने अपने भ्रमणशील साथियों को स्थानीय संस्कृति में पूरी तरह डूबने से रोकने के लिए सामाजिक नियंत्रण की जटिल प्रणालियाँ निर्मित की थीं। दूसरी ओर, मेजबान समाज भी विदेशी व्यापारियों को केवल इसलिए सहन करता था क्योंकि उनकी उपस्थिति लाभप्रद थी, किंतु स्थानीय लोग प्रवासियों को संदेह की दृष्टि से देखते थे। अतः दोनों ही पक्ष थोड़े फासले पर आधारित संबंधों को प्राथमिकता देते थे।

वाणिज्यिक दलाली का सोग्डियन मॉडल (The Sogdian Model of Commercial Agency)

सोग्डियन मॉडल 'व्यापारिक समुदाय' नामक संस्था के व्यावहारिक रूप का एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह मॉडल वाणिज्यिक समुदायों के एक ऐसे परस्पर संबद्ध नेटवर्क को निरूपित करता है जहाँ व्यावसायिक विशेषज्ञ अपनी मूल मातृभूमि को छोड़कर सुदूर नगरों में प्रवासियों के रूप में निवास करते थे। ये विदेशी व्यापारी स्थानीय समाजों की रीति-रिवाजों, भाषा और व्यापारिक शैलियों में पारंगत होकर अंतर-साँस्कृतिक दलालों के रूप में कार्य करते थे तथा अपनी मूल संस्कृति के लोगों और स्थानीय निवासियों के बीच व्यापार को बढ़ावा देते थे।

विशाल रेशम मार्ग नेटवर्क पर होने वाली वाणिज्यिक गतिविधियों के मुख्य संचालक सोग्डियन ही थे। बैक्ट्रिया क्षेत्र के यूए-ची कबीले से संबंधित सोग्डियनों को निरंतर बिना किसी निश्चित देश वाले घुमंतू व्यापारियों के रूप में चित्रित किया गया है। चीनी इतिहासकार सोग्डियनों को एक "व्यापारी जाति" के रूप में पहचानते थे जो "लाभ कमाने के लिए कहीं भी जाने को तत्पर रहते थे।" उनकी इसी यायावर प्रवृत्ति के कारण वे छठी शताब्दी ईस्वी के मध्य तक मध्य एशिया के थल व्यापारिक मार्गों पर अपना पूर्ण प्रभुत्व बनाए रखने में सफल रहे। पूरे यूरेशियाई

महाद्वीप में वस्तुओं, विचारों और तकनीकों का संचरण मुख्य रूप से मध्यस्थ की भूमिका निभाने वाले सोग्डियन व्यापारियों पर ही निर्भर था।

उनका व्यापारिक नेटवर्क अत्यधिक विशाल था, जो सोग्डियाना (समरकंद के निकट) से मध्य एशियाई मरुद्यानों (oases) को पार करता हुआ चीन तक विस्तृत था; यह नेटवर्क भारत, चीन और सोग्डियाना को तीन कोणों पर रखते हुए एक विशाल त्रिभुज का निर्माण करता था। सोग्डियन भाषा रेशम मार्ग की अंतर-साँस्कृतिक भाषा (lingua franca) बन गई, जिसने साँस्कृतिक प्रसारकों के रूप में उनकी भूमिका को और सुदृढ़ किया। ये व्यापारी रेशम जैसी उच्च-मूल्य वाली विलासिता की वस्तुओं के विनिमय को सुगम बनाते थे। मध्य एशिया में होने वाले इस रेशम व्यापार में बौद्ध, ईसाई, मुस्लिम, मनिचैन और पारसी धर्मों के अनुयायी एक साथ शामिल होते थे।

इस मॉडल का एक केंद्रीय तत्व वाणिज्य का सुव्यवस्थित संगठन था। रेशम मार्ग से गुज़रने वाले सोग्डियन व्यापारिक कारवाँ अत्यंत विशाल होते थे; चीनी आधिकारिक इतिहास दर्ज करते हैं कि इन कारवाँओं में अक्सर दो सौ से अधिक व्यापारी शामिल होते थे, जो छह सौ ऊँटों पर हज़ारों थान रेशम लादकर यात्रा करते थे। इन विशाल अभियानों का नेतृत्व **साबाओ** (sabao) नामक अधिकारी करते थे, जो संस्कृत अथवा सोग्डियन शब्द 'सार्थवाह' (कारवां-नेता) से व्युत्पन्न एक पद था। साबाओ विदेशी प्रवासियों के लिए आरक्षित एक उच्च प्रशासनिक पद था, जिसे उत्तरी राजवंशों के काल में विशेष मान्यता प्राप्त थी। साबाओ विदेशी समुदाय के नागरिक और धार्मिक नेता के रूप में कार्य करता था और विद्वानों का मानना है कि यह पद सोग्डियन अभिजात वर्ग के सदस्यों को ही प्रदान किया जाता था, जैसे लियांगझाऊ के साबाओ विरकॉक और टोंगझाऊ के साबाओ अन जिया।

सोग्डियन व्यापारिक नेटवर्क के स्पष्ट भौतिक साक्ष्य ऊपरी सिंधु घाटी से प्राप्त होते हैं, जहाँ ब्राह्मी और बैक्ट्रियन अभिलेखों के साथ-साथ लगभग 600 सोग्डियन अभिलेख चट्टानों पर उत्कीर्ण मिले हैं। ये पुरातात्विक साक्ष्य तीसरी से सातवीं शताब्दी ईस्वी के मध्य सोग्डियाना, उत्तरी पाकिस्तान, तारिम बेसिन और चीन के बीच चलने वाले इस व्यापारिक मार्ग की पुष्टि करते हैं। इन अभिलेखों में व्यापारी अपनी यात्रा की सुरक्षा की प्रार्थना करते दिखाई देते हैं; उदाहरण के लिए, 'शातियाल' का स्थल वाणिज्यिक केंद्र होने के साथ-साथ यात्रियों के लिए एक मार्गस्थ पूजा-स्थल का कार्य भी करता था।

सोग्डियन समुदाय बहु-धार्मिक था; उनका धर्म पारसी (ज़ोरोस्ट्रियन), मनिचैन, ईसाई और बौद्ध मान्यताओं का एक अनूठा सम्मिश्रण था, जिसने उनके बिखरे हुए समुदायों को एक साँस्कृतिक सूत्र में बाँधा। उत्तर चीन में बसे सोग्डियन कुलीन वर्ग ने पारंपरिक छोटे अस्थि-पात्रों (astōdān) के स्थान पर विशाल पाषाण शव-पात्रों और मंचों का प्रयोग करके एक नवीन अंत्येष्टि वास्तुकला को जन्म दिया। इन अंत्येष्टि पाषाण-सामग्रियों पर उत्कीर्ण दृश्यावली सोग्डियन, चीनी और पारसी प्रतीकों (जैसे पवित्र अग्नि वेदी) का कलात्मक सम्मिश्रण प्रस्तुत करती है, जो यह दर्शाती है कि सोग्डियनों ने चीन में रहते हुए भी अपनी संस्कृति और स्थानीय रीतियों के बीच एक संकर पहचान का सचेत निर्माण किया था।

हूणों और बाद में तुर्कों के अधीन रहने के बावजूद सोग्डियन अपने व्यापारिक नेटवर्क को बनाए रखने में सफल रहे, क्योंकि इन शासकों ने व्यापार पर कर लगाने के साथ-साथ व्यापारियों की सुरक्षा और वाणिज्यिक निरंतरता को प्रोत्साहन देना अपने हित में समझा।

व्यापारी एवं संस्थागत सत्ता (Merchants and Institutional Power)

संगठित व्यापारिक गतिविधियों ने पूर्व-आधुनिक विश्व में आर्थिक समृद्धि, राजनीतिक स्थिरता और धार्मिक विस्तार के बीच एक अनिवार्य कड़ी के रूप में कार्य किया।

I. **संगठित वाणिज्यिक पहचान एवं अभिजात स्थिति :** व्यापारिक समुदाय की एक मौलिक आवश्यकता यह थी कि वह अपनी दलाली की क्षमता बनाए रखने के लिए मेजबान समाज से पृथक पहचान बनाए रखे। रेशम मार्ग पर सक्रिय सोग्डियन व्यापारियों ने अपनी इस संगठित वाणिज्यिक पहचान को संस्थागत सत्ता में रूपांतरित किया। उत्तर चीन में बसे सोग्डियन व्यापारियों को राजकीय प्रशासन द्वारा **साबाओ** का आधिकारिक पद प्रदान किया जाना यह सिद्ध करता है कि व्यापारिक कुलीन वर्ग को विदेशी समुदाय के प्रशासनिक व धार्मिक नेतृत्व के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। विरकॉक और अन जिया जैसे साबाओ अधिकारियों की समाधियों से प्राप्त समृद्ध कलाकृतियाँ और चीनी-शैली के पाषाण शव-पात्र उनके परिवार की उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा और निर्मित साँस्कृतिक पहचान को उजागर करते हैं।

II. **व्यापारी और धर्मनिरपेक्ष शासन संरचनाएँ :** कई प्राचीन अर्थव्यवस्थाओं में व्यापारिक निकायों ने राज्य सत्ता के समानांतर शक्तिशाली संस्थागत ढाँचे विकसित किए। प्राचीन मेसोपोटेमिया (ईसा पूर्व 20वीं शताब्दी) में अशुर नगर-राज्य का संचालन आंशिक रूप से **कारुम** (kārum) द्वारा किया जाता था, जो व्यापारियों का एक संगठित निकाय था। यह

निकाय ताँबे के व्यापार पर कर वसूलने, जमा बैंक और आयात-निर्यात केंद्र के रूप में कार्य करता था।

रोमन संसार में, इंडो-रोमन व्यापार के विशाल जोखिम और लागत के कारण छोटे व्यापारी अकेले व्यापार करने में सक्षम नहीं थे; अतः अत्यधिक समृद्ध वित्तपोषकों या व्यापारी-संघों (consortia) ने इन अभियानों का वित्तपोषण किया। मुज़िरिस पपायरस इसी प्रकार की एक पदानुक्रमित व्यवस्था को उजागर करता है जहाँ एक धनिक निवेशक लंबी दूरी की समुद्री यात्राओं हेतु व्यापारियों को नियुक्त करता था। हालाँकि, राज्य और व्यापारियों के संबंध अक्सर असमान होते थे। रोमन साम्राज्य ने इस व्यापार पर 25% का भारी आयात कर (कस्टम ड्यूटी) लागू किया और लीउके कोमे जैसे बंदरगाहों पर सैन्य अधिकारियों (सेंचुरियन) की तैनाती करके कर वसूली सुनिश्चित की।

III. **व्यापारी, संरक्षण और धार्मिक संस्थाएँ :** व्यापारी समुदायों की सत्ता धार्मिक नेटवर्क्स के साथ गहराई से जुड़ी हुई थी। व्यापारियों द्वारा अर्जित संपदा ने उन्हें बौद्ध संघ जैसी धार्मिक संस्थाओं का अनिवार्य संरक्षक बना दिया। इस सहजीवी संबंध के अंतर्गत व्यापारियों द्वारा भौतिक दान दिया जाता था, जिसके बदले उन्हें आध्यात्मिक पुण्य प्राप्त होता था। बौद्ध अभिलेखीय साक्ष्यों में 'श्रेष्ठिन्' (स्राव/सेठ, महाजन या श्रेणी-प्रमुख) और 'सार्थवाह' जैसी वाणिज्यिक उपाधियाँ धारण करने वाले दाताओं का बारम्बार उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त, बौद्ध साहित्य ने बुद्ध को 'सार्थवाह' की उपाधि देकर तथा जातक कथाओं में व्यापारियों को मुख्य पात्र बनाकर वाणिज्यिक वर्ग को सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की।

4.3.2 व्यापारी, पुण्य और बौद्ध संघ (Merchants, Merit, and the Buddhist Sangha)

बौद्ध मठवासी संस्थाओं की स्थापना, रखरखाव और विस्तार सीधे तौर पर वाणिज्यिक गतिविधियों के नेटवर्क तथा धार्मिक 'पुण्य' (पुण्य) की अवधारणा से जुड़े हुए थे। संन्यासी होने के नाते भिक्षु और भिक्षुणियाँ अपने भौतिक भरण-पोषण के लिए पूरी तरह गृहस्थ समर्थकों के दानों (दान) पर निर्भर थे, क्योंकि विनय नियमों द्वारा प्रत्यक्ष आर्थिक गतिविधियों और व्यक्तिगत धन संचय का निषेध किया गया था।

पुण्य और संपदा का सहजीवी संबंध (The Symbiotic Relationship of Merit and Wealth)

बौद्ध संघ और वाणिज्यिक वर्ग के बीच का यह विनिमय एक आध्यात्मिक व्यवस्था पर आधारित था। भौतिक उपहारों (आमिषदान) के बदले में भिक्षु समुदाय 'धम्म का दान' (धम्मदान)

प्रदान करता था, जिससे दानों को महान धार्मिक पुण्य प्राप्त होता था। यह पुण्य एक ऐसा हस्तांतरणीय तत्व माना जाता था जो परिजनों और "समस्त प्राणियों" के भावी कल्याण तथा उत्तम पुनर्जन्म को सुनिश्चित करता था। इस आध्यात्मिक लाभ की लालसा ने धन संचय करने हेतु एक "आर्थिक उत्प्रेरक" का कार्य किया, क्योंकि अत्यधिक दान देने से अधिक पुण्य प्राप्त होता था। इस प्रकार भौतिक संपदा, विशेष रूप से रेशम, पारलौकिक पुण्य के साथ सीधे तौर पर जुड़ गई।

बौद्ध साहित्यिक परंपराओं ने इस वाणिज्यिक वर्ग को आकर्षित करने के लिए बुद्ध को 'सार्थवाह' (कारवां-नेता) के रूप में चित्रित किया, जो सांसारिक भवसागर या "पुनर्जन्म के मरुस्थल" से अपने अनुयायियों को निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शक थे। जातक और अवदान आख्यानों में बुद्ध के पूर्व जन्मों को व्यापारी या सार्थवाह के रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्रावस्ती में सिक्कों से भूमि ढककर जेतवन महाविहार दान करने वाले धनिक श्रेष्ठिन् अनाथपिंडक, तथा बुद्ध के सम्बोधि प्राप्त करने के तुरंत बाद उन्हें खाद्य सामग्री भेंट करके प्रथम उपासक बनने वाले भ्राता ट्रैपुष और भल्लिक (जिन्होंने बुद्ध के केश व नख अवशेष प्राप्त कर अपने क्षेत्र में स्तूप स्थापित किए) इस वणिक संरक्षण के अमर उदाहरण हैं।

यह वाणिज्यिक चेतना दिव्यावदान जैसे ग्रंथों में स्पष्ट दिखाई देती है जहाँ कई कथाएँ समुद्री यात्राओं और कारवाँ अभियानों से जुड़ी हैं। संकटग्रस्त व्यापारियों के संरक्षक के रूप में बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की उपासना की जाती थी, और समुद्री तूफानों या डाकुओं से भरे दुर्गम मार्गों पर नाविक व व्यापारी रक्षा हेतु उनके नाम का स्मरण करते थे।

वस्तुएँ और धार्मिक मूल्य (Commodities and Religious Value)

मूल्यवान वस्तुओं के प्रवाह ने इस धार्मिक अर्थव्यवस्था को निरंतर ऊर्जा प्रदान की। बौद्ध साहित्य में वर्णित 'सप्तरत्न'—जिनमें सोना, चाँदी, मोती, वैडूर्य (लाजवर्द) और रेशम शामिल थे—वाणिज्यिक व्यापार और बौद्ध अनुष्ठानों दोनों में अत्यधिक मूल्यवान माने जाते थे। बौद्ध धर्म द्वारा प्रदान किए गए धार्मिक और प्रतीकात्मक अर्थ ने इन वस्तुओं के बाजार मूल्य और माँग में अत्यधिक वृद्धि की।

विशेष रूप से रेशम थल-व्यापार की मुख्य वस्तु होने के साथ-साथ बौद्ध अनुष्ठानों में एक "पवित्र और मूल्यवान वस्तु" के रूप में प्रयुक्त होने लगा। भिक्षु और तीर्थयात्री जाने-अनजाने में पूरे एशिया में रेशम के संवाहक बने। चीनी यात्री ह्वेनसांग को गाओचांग के राजा द्वारा यात्रा हेतु प्रचुर रेशम प्रदान किया गया, जिसे उन्होंने मार्ग के स्तूपों व मठों में दान कर दिया।

इसी प्रकार इत्सिंह जैसे यात्रियों ने प्राप्त रेशम से बोधगया में बुद्ध प्रतिमा हेतु अनुष्ठानिक वस्त्र तैयार किए। तांग सम्राटों ने अनुवाद सेवाओं हेतु भारतीय व चीनी भिक्षुओं को बैंगनी रेशमी वस्त्र प्रदान किए, जो बौद्ध भिक्षुओं के लिए सर्वोच्च नागरिक सम्मान था।

मध्य एशिया (जैसे तुरफान) के अंत्येष्टि अभिलेखों में यह दर्ज मिलता है कि मृतक के साथ परलोक ले जाने वाले पुण्यों और संपदा की सूची में रेशम के थानों और सिक्कों का स्पष्ट उल्लेख किया जाता था, जो यह सिद्ध करता है कि भौतिक संपदा और पारलौकिक पुण्य एक-दूसरे के पर्याय बन चुके थे।

रोमन साम्राज्य से होने वाले व्यापार में सोने और चाँदी के सिक्कों का भारी प्रवाह भारत की ओर हुआ, जिसे मुख्य रूप से धातु-पिंड (बुलियन) के रूप में तौलकर स्वीकार किया जाता था। इसके बदले में भारत से काली मिर्च, मोती, हाथीदाँत और बहुमूल्य रत्नों का निर्यात होता था, जिसने विभिन्न संस्कृतियों के मध्य संपदा और सौंदर्यशास्त्र के आदान-प्रदान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मठवासी आर्थिक अनुकूलन (Monastic Economic Adaptation)

यद्यपि आदर्श विनय नियमों में व्यक्तिगत रूप से धन छूने का निषेध था, किंतु संस्थागत बौद्ध संघ ने तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के साथ गहरा अनुकूलन किया। विनय नियमों में ऐसे कई अपवाद शामिल किए गए जिनके तहत सामूहिक संघ को धन स्वीकार करने, अचल संपत्ति (अक्षयनीवी) धारण करने, और ब्याज पर धन उधार देने व निवेश करने की कानूनी अनुमति प्राप्त थी।

भिक्षुओं को वर्षावास के दौरान व्यापारिक कारवाँओं के साथ यात्रा करने की अनुमति दी गई थी, जिससे वे लंबी दूरी के व्यापारियों से दान एकत्र कर सकते थे। इसके अतिरिक्त, मठों को चलाने के लिए अनाज (जैसे चावल) के क्रय-विक्रय जैसी व्यावसायिक गतिविधियों में संलग्न होना पड़ता था। इस प्रकार वाणिज्य और धर्म के इस परस्पर निर्भर संबंध ने एक ऐसा "नैतिक अर्थशास्त्र" निर्मित किया जिसने पूरे एशिया में बौद्ध संघ के संस्थागत विस्तार हेतु आवश्यक अधिशेष संसाधनों की निरंतर उपलब्धता सुनिश्चित की।

4.4 साँस्कृतिक संचरण के केंद्र एवं क्षेत्र (Localities and Nodes of Cultural Transmission)

इस दृष्टिकोण के अंतर्गत 'नेटवर्क उपागम' (Networks approach) का प्रयोग किया जाता है। यह मॉडल यह प्रतिपादित करता है कि भौतिक वस्तुएँ और साँस्कृतिक तत्व विशिष्ट 'मार्गों'

(conduits) के माध्यम से प्रवाहित होकर विशेष 'केंद्रों' (nodes) तक पहुँचते हैं, जहाँ आर्थिक, राजनीतिक या धार्मिक सत्ता का संकेंद्रण होता है।

4.4.1 थल मार्ग एवं उत्तर-पश्चिमी केंद्र (Overland Arteries and Northwestern Hubs)

अंतर-क्षेत्रीय व्यापार का प्राथमिक थल मार्ग 'उत्तरापथ' (Northern Route) था, जो कोई एकल राजमार्ग न होकर विभिन्न मार्गों का एक जटिल नेटवर्क था। यह विशाल मार्ग प्रणाली गंगा के मैदानी इलाकों को दक्षिण एशिया के उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों से जोड़ती थी। इस मार्ग नेटवर्क का उल्लेख प्राचीन व्याकरणकार पाणिनि के समय से ही मिलता है। मौर्य सम्राट अशोक ने इस साम्राज्यीय मार्ग प्रणाली का सक्रिय रूप से रखरखाव और विस्तार किया। उन्होंने इन लंबी दूरी के मार्गों पर मनुष्यों और पशुओं की सुविधा हेतु कुएँ खुदवाए और छायादार वृक्ष लगवाए, तथा प्रत्येक नौ मील की दूरी पर विश्रामगृह बनवाने का आदेश दिया। इन अवसंरचनात्मक सुविधाओं ने प्रशासनिक अधिकारियों, सेनाओं, व्यापारियों और बौद्ध भिक्षुओं की सुरक्षित आवाजाही सुनिश्चित की।

उत्तर-पश्चिमी सीमांत क्षेत्र एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण संपर्क क्षेत्र (contact zone) के रूप में कार्य करता था, जो निरंतर होने वाले अंतर-साँस्कृतिक विनिमय से समृद्ध था। इस क्षेत्र में भारतीय, ईरानी, हेलेनिस्टिक (यूनानी) और मध्य एशियाई शैलियों का अद्भुत सम्मिश्रण दिखाई देता है। तक्षशिला उत्तर का एक प्रमुख महानगर और केंद्रीय व्यापारिक धुरी था। अपनी रणनीतिक स्थिति के कारण यह मध्य एशिया, कश्मीर और पंजाब की ओर जाने वाले मुख्य व्यापारिक मार्गों को जोड़ने वाले एक प्रमुख वाणिज्यिक केंद्र के रूप में उभरा।

तक्षशिला से सटा गांधार क्षेत्र साँस्कृतिक गतिविधियों का एक असाधारण केंद्र था। कृषि और वाणिज्य से प्राप्त समृद्धि ने इस क्षेत्र में विशाल बौद्ध प्रतिष्ठानों को स्थायित्व प्रदान किया। यहाँ मठ और स्तूप प्रायः सर्पिल पर्वतीय रास्तों पर अथवा मुख्य दर्रों के निकट स्थित थे। यह रणनीतिक स्थिति उन्हें कृषि योग्य भूमि तक पहुँच के साथ-साथ व्यापारिक मार्गों की निकटता भी प्रदान करती थी। इंडो-ग्रीक, शक और कुषाण जैसे क्रमिक विदेशी शासकों ने इन मार्गों पर अपना नियंत्रण बनाए रखा। कुषाण काल (पहली से तीसरी शताब्दी ईस्वी) के दौरान इन मार्गों पर नियंत्रण से लंबी दूरी के व्यापार को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला और उन्होंने बैक्ट्रिया को भारतीय हृदयस्थल से जोड़ने वाले कई नगरीय केंद्रों का संचालन किया। मथुरा इस नेटवर्क पर एक अन्य महत्त्वपूर्ण केंद्र था, जो पूर्व-पश्चिम उत्तरापथ को उत्तर-दक्षिण दक्षिणापथ से जोड़ता था।

इन मुख्य धमनियों के अतिरिक्त, छोटी-छोटी सहायक नदियाँ और संकीर्ण पर्वतीय मार्ग ऊपरी सिंधु क्षेत्र को सीधे तारिम बेसिन की ओर जाने वाले रेशम मार्ग से जोड़ते थे। ये मार्ग भिक्षुओं और गृहस्थ अनुयायियों के लिए पारगमन क्षेत्र (transit zones) का कार्य करते थे। यात्रियों ने इन चट्टानों पर अक्सर शैलचित्र (petroglyphs) और अभिलेख (graffiti) उकेरे, जो धार्मिक पुण्य प्राप्त करने हेतु अर्पित किए गए दृश्य-साक्ष्य थे। तारिम बेसिन में स्थित कुचा और खोटान जैसे स्थल चीन में बौद्ध धर्म के लंबी दूरी के संचरण हेतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे। हालाँकि, इस मध्य एशियाई पारगमन क्षेत्र में औपचारिक बौद्ध संस्थाएँ देर से स्थापित हुईं, जिससे यह संकेत मिलता है कि प्रारंभिक वैचारिक प्रवाह प्रायः इन मध्यवर्ती स्थलों को पार करते हुए सीधे आगे बढ़ जाता था।

4.4.2 समुद्री नेटवर्क एवं तटीय केंद्र (Maritime Networks and Coastal Hubs)

थल मार्गों के पूरक के रूप में समुद्री नेटवर्क ने लंबी दूरी के साँस्कृतिक और वाणिज्यिक विनिमय में केंद्रीय भूमिका निभाई। तटीय केंद्र मुख्य योजक धुरियों के रूप में कार्य करते थे, जो दक्षिण एशियाई थल मार्गों को हिंद महासागर के समुद्री मार्गों से जोड़ते थे। इन बंदरगाहों ने उपमहाद्वीप से वस्तुओं के निर्यात को सुगम बनाया और साथ ही सुदूर अंतर-साँस्कृतिक संपर्कों के अवसर निर्मित किए।

ग्रीक व्यापारी की मार्गदर्शिका 'पेरिप्लस मारिस एरिथ्रेई' (PME) विशिष्ट समुद्री मार्गों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है। पेरिप्लस लाल सागर से भारत तक के समुद्री क्षेत्रों, बंदरगाहों और व्यापारिक वस्तुओं को सूचीबद्ध करता है। प्राचीन स्थलों की सटीक स्थिति निर्धारित करने और दूरियों के मापन के संदर्भ में इस ग्रंथ को अत्यंत प्रामाणिक माना जाता है।

4.4.3 रोमन लाल सागर बंदरगाह : पूर्वी वस्तुओं के प्रवेश द्वार (The Roman Red Sea Ports: Funnels for Eastern Goods)

पूर्व से रोमन साम्राज्य की ओर जाने वाली वस्तुओं के लिए लाल सागर मुख्य प्रवेश मार्ग (funnel) के रूप में कार्य करता था। इस क्षेत्र में दो मुख्य मार्ग संचालित थे। पश्चिमी मार्ग छह बंदरगाहों को मरुस्थलीय चौकियों के माध्यम से नील नदी से जोड़ता था, जो अंततः अलेक्जेंड्रिया तक पहुँचते थे। वहीं पूर्वी मार्ग व्यापारिक वस्तुओं को गाज़ा की ओर निर्देशित करता था। 30 ईसा पूर्व में सम्राट ऑगस्टस द्वारा मिस्र के विलय के बाद इन मार्गों का व्यावसायिक उपयोग बड़े पैमाने पर शुरू हुआ, जो मुख्य रूप से मानसूनी हवाओं के आवधिक चक्रों पर निर्भर था।

पेरिप्लस में मायोस हॉर्मोस (कुसैर अल-कदीम) और बेरेनिके बंदरगाहों का बारम्बार उल्लेख मिलता है। मायोस हॉर्मोस बेरेनिके की तुलना में अधिक उत्तर में स्थित था। प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में स्ट्रैबो ने इसे दोनों में अधिक महत्त्वपूर्ण बंदरगाह बताया था, जो नील नदी पर स्थित कॉप्टोस बंदरगाह के सबसे निकट था। पुरातात्विक उत्खनन में सैकड़ों साबुत व आंशिक एम्फोरा पात्रों के पुनरुप्रयोग से निर्मित एक जेटी (घाट) का पता चला है।

बेरेनिके बंदरगाह मायोस हॉर्मोस से लगभग 300 किमी दक्षिण में स्थित था, जिसकी स्थापना उसी काल में हुई थी। यहाँ तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य से छठी शताब्दी ईस्वी के प्रारंभ तक निरंतर मानव बसाव के प्रमाण मिलते हैं। बेरेनिके एक विशाल समुदाय था जहाँ पाँचवीं या छठी शताब्दी का एक विशेष गिरजाघर (चर्च) मिला है, जो ईसाई समुदाय की उपस्थिति को दर्शाता है। इन दोनों बंदरगाहों की एक-दूसरे के निकट सह-उपस्थिति शोधकर्ताओं के लिए कौतूहल का विषय रही है। कुछ विद्वानों का मानना है कि बेरेनिके की दक्षिणी स्थिति लाल सागर की कठिन उत्तरी हवाओं से बचने में सहायक थी, जबकि अन्य का मानना है कि इन समुद्री क्षेत्रों से परिचित भारतीय नाविकों द्वारा संचालित जहाज उत्तरी हवाओं की अनभिज्ञता के कारण बेरेनिके को प्राथमिकता देते थे।

इन लाल सागर स्थलों से प्राप्त अभिलेखों (graffiti) से भारतीय निवासियों की उपस्थिति का स्पष्ट संकेत मिलता है। यहाँ तमिल-ब्राह्मी लिपि में व्यक्तिगत नामों वाले तीन अभिलेख प्राप्त हुए हैं: दो मायोस हॉर्मोस से और एक बेरेनिके से, जो इन बंदरगाहों को सुदूर दक्षिण भारत से जोड़ते हैं। बेरेनिके का अभिलेख एक रोमन ड्रेसेल 2-4 एम्फोरा पर उकेरा गया था, जो यह दर्शाता है कि भारतीय व्यापारियों की पहुँच रोमन पात्रों तक थी। इसके अतिरिक्त पुरातात्विक उत्खननों से 'रूलेटेड पात्र' (RW) और 'ऑर्गेनिक ब्लैक पात्र' जैसे भारतीय मृद्भांड भी मिले हैं, जो भारतीय समुदायों द्वारा उनके उपयोग की पुष्टि करते हैं।

4.4.4 दक्षिण अरबी एवं पूर्वी अफ्रीकी केंद्र (South Arabian and East African Nodes)

लाल सागर के पूर्वी तट पर भी महत्त्वपूर्ण बंदरगाह स्थित थे। 'लीउके कोमे' बंदरगाह कारवाँ मार्गों द्वारा पेट्रा से और अंततः भूमध्यसागरीय बंदरगाह गाज़ा से जुड़ा हुआ था। पेरिप्लस लीउके कोमे को छोटे अरब जहाजों के एक बंदरगाह के रूप में वर्णित करता है, जहाँ 25% का अनिवार्य सरकारी आयात कर वसूलने के लिए एक चुंगी अधिकारी और सैन्य अधिकारी (सेंचुरियन) तैनात रहता था।

इसके और दक्षिण में, अफ्रीका का 'अडुलिस' बंदरगाह (आधुनिक मस्सावा के निकट) अक्सुमाइट साम्राज्य (जिसकी राजधानी इथियोपिया में अक्सुम थी) के मुख्य बंदरगाह के रूप में कार्य करता था। पेरिप्लस अडुलिस के महत्त्व को रेखांकित करता है, जो हाथीदाँत और कछुए की पीठ के खोल जैसी वस्तुओं के निर्यात हेतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण था; ये वस्तुएँ रोमन संसार और भारत भेजी जाती थीं। तीसरी शताब्दी के मध्य से सातवीं शताब्दी ईस्वी तक अक्सुम एक शक्तिशाली अंतरराष्ट्रीय शक्ति के रूप में उभरा, जिसने रोमनों के लिए मध्यस्थ की भूमिका निभाई। बेरेनिके और आइला में ईसाई स्थलों की उपस्थिति इस क्षेत्र में उनकी सक्रिय भूमिका को दर्शाती है, जहाँ साझा ईसाई आस्था ने व्यापारिक समूहों को अधिक सुदृढ़ बनाया।

4.4.5 भारतीय तटीय केंद्र (Indian Coastal Hubs)

भारतीय तट रेखा पर व्यापारिक नेटवर्क विभिन्न शाखाओं में विभाजित हो जाता था, जहाँ तटीय क्षेत्रों ने समुद्री संपर्कों हेतु अनेक प्रवेश बिंदु प्रदान किए।

1. **मुज़िरिस (पट्टणम):** मालाबार तट (लिमायरा) पर स्थित मुज़िरिस पेरिप्लस में वर्णित चेर राजवंश का सबसे महत्त्वपूर्ण बंदरगाह था। इसने बारिगाज़ा (भड़ौच) और ग्रीक जहाजों दोनों से होने वाले व्यापार के माध्यम से अभूतपूर्व समृद्धि अर्जित की। पट्टणम में हुए उत्खनन मुज़िरिस के प्राचीन विवरणों से मेल खाते हैं, जो पहली शताब्दी ईसा पूर्व के अंत से तीसरी शताब्दी ईस्वी तक फैले विदेशी संपर्कों को सिद्ध करते हैं। यहाँ से प्रारंभिक रोमन एम्फोरा, पालिशदार पात्र और टॉरपीडो जार प्राप्त हुए हैं। मुज़िरिस पूरे भारत के लिए एक प्रमुख संग्रह एवं वितरण केंद्र (entrepôt) के रूप में कार्य करता था।
2. **अरिकामेडु (पोदोउके):** कोरोमंडल तट पर पांडिचेरी के निकट स्थित अरिकामेडु इंडो-रोमन व्यापार का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण केंद्र था। पेरिप्लस में पोदोउके का उल्लेख उत्तरी और पश्चिमी भारत से आने वाली स्थानीय नौकाओं के स्थल के रूप में किया गया है। उत्खनन से इतालवी लाल-पालिशदार 'अरेटाइन पात्र', एम्फोरा और काँच की वस्तुओं सहित प्रचुर रोमन सामग्री प्राप्त हुई है। रोमन कलाकृतियों के इस संकेंद्रण ने प्रारंभ में पुरातत्वविदों को यह मानने पर मजबूर किया कि अरिकामेडु रोमन व्यापारियों द्वारा बसाई गई एक विदेशी बस्ती थी। हालाँकि, नए साक्ष्यों (जैसे स्थानीय लोगों द्वारा पुनरुयोग किए गए एम्फोरा के टुकड़े) से सिद्ध होता है कि रोमन व्यापार स्थानीय प्रणालियों के साथ समाहित हो चुका था। इसके अलावा, अरिकामेडु से प्राप्त एक सिगिलाटा पात्र के टुकड़े पर तमिल-ब्राह्मी अभिलेख उकेरा गया है।

3. **बारिगाज़ा (भड़ौच):** नर्मदा नदी के मुहाने के निकट स्थित बारिगाज़ा (संस्कृत भृगुकच्छ) एक प्रमुख बंदरगाह और औद्योगिक निर्माण केंद्र था, जिसके फ़ारसी खाड़ी के साथ सीधे व्यापारिक संबंध थे। पेरिप्लस से ज्ञात होता है कि पहली शताब्दी ईस्वी के मध्य में यह क्षेत्र पश्चिमी क्षत्रपों (नहपान की क्षहरात शाखा) के नियंत्रण में था। बारिगाज़ा रोमन सोने-चाँदी के सिक्कों और मदिरा का आयात करता था, तथा हाथीदाँत, अकीक, गोमेद, सूती वस्त्र और पिप्पली (लगातार माँग में रहने वाली काली मिर्च) का निर्यात करता था।

4. **श्रीलंका (ताम्रापर्णी/तप्रोबेन):** श्रीलंका का द्वीप एक प्रमुख व्यापारिक धुरी के रूप में कार्य करता था। कॉसमास इंडिकोप्लेस्टेस ने इसे एक ऐसे बंदरगाह के रूप में वर्णित किया जहाँ भारत, फ़ारस और इथियोपिया से जहाज आते थे। चौथी शताब्दी ईस्वी के पश्चात श्रीलंका हिंद महासागर का सबसे बड़ा समुद्री व्यापारिक केंद्र बन गया। प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध यह द्वीप नीलम व वैडूर्य जैसे रत्नों का व्यापार करता था। 'मंटाई' यहाँ का मुख्य बंदरगाह था, जहाँ से मेसोपोटेमियाई टॉरपीडो जार और पालिशदार मृद्भांड प्राप्त हुए हैं। इन अवशेषों की उपस्थिति फ़ारसी खाड़ी के माध्यम से होने वाले व्यापार के बढ़ते महत्त्व और सासानी साम्राज्य के प्रभाव को उजागर करती है।

4.5 सारांश (Summary)

यह इकाई उन प्रमुख कारकों (agents) तथा भौगोलिक स्थलों पर ध्यान केंद्रित करती है, जिन्होंने भारत और वैश्विक संसार के मध्य व्यापारिक तथा साँस्कृतिक विनिमयों को सुगम बनाया। इन प्रमुख कारकों में साम्राज्यीय संरक्षक, धार्मिक प्रचारक और भ्रमणशील व्यापारी शामिल थे।

मौर्य सम्राट अशोक जैसे शासकों ने सुदूर नेटवर्क्स को स्थापित करने के लिए अपनी राजनीतिक सत्ता का प्रयोग किया। अशोक ने 'धम्मविजय' (धार्मिक विजय) तथा करुणा व दानशीलता जैसे नैतिक सिद्धांतों का प्रसार किया, एवं हेलेनिस्टिक राजाओं के साथ उच्च-स्तरीय कूटनीतिक संबंध बनाए रखे, जिनका एक व्यावहारिक आधार व्यापारिक विनिमय में निहित था। उन्होंने मुख्य मार्गों पर विश्रामगृहों के निर्माण और कुएँ खुदवाकर यात्रा को सुगम बनाया। कालांतर में, कुषाण शासकों–विशेष रूप से कनिष्ठ–ने उत्तरापथ के प्रमुख केंद्रों को एकीकृत किया, जिसने अंतर-साँस्कृतिक विनिमय को त्वरित किया तथा धार्मिक संस्थाओं के संरक्षण हेतु आवश्यक अधिशेष संपदा का सृजन किया।

धार्मिक विशेषज्ञ वैचारिक सामग्रियों के संचरण में मुख्य कारक सिद्ध हुए। इनमें काश्यप मातंग जैसे भारतीय भिक्षु (जिन्होंने चीन की यात्रा की) तथा तिब्बती दरबारी थोन-मी संभोट (जिन्होंने भारत में अध्ययन करने के पश्चात तिब्बती लिपि तैयार की) शामिल थे।

'व्यापारिक समुदाय' (Trade Diaspora) के मॉडल का उपयोग करते हुए व्यापारियों को विनिमय के प्राथमिक कारकों के रूप में स्वीकार किया गया। सोग्डियन व्यापारियों, जिन्हें बिना किसी निश्चित देश के यायावर व्यापारियों के रूप में वर्णित किया गया है, ने अंतर-साँस्कृतिक दलालों के रूप में थल रेशम मार्ग पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। यह वाणिज्यिक वर्ग बौद्ध संघ के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण था, जो आध्यात्मिक 'पुण्य' (पुण्य) प्राप्त करने की आकांक्षा में भौतिक संपदा (दान) प्रदान करने वाले मुख्य संरक्षक बने। दूसरी ओर, मठों ने विनय नियमों के अपवादों का उपयोग करते हुए धन स्वीकार करके और अचल संपत्ति व पूँजी का निवेश करके स्वयं को जटिल आर्थिक संस्थाओं के रूप में विकसित किया।

इन सभी कारकों ने विशिष्ट क्षेत्रों और प्रमुख केंद्रों पर निर्भर रहकर कार्य किया। थल मार्गों के प्रमुख केंद्रों में गांधार (एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण साँस्कृतिक सीमावर्ती क्षेत्र) तथा तक्षशिला (एक प्रमुख वाणिज्यिक महानगर) शामिल थे। समुद्री मार्ग लाल सागर के मायोस हॉर्मोस और बेरेनिके जैसे बंदरगाहों पर केंद्रित थे, जो रोमन व्यापार के मुख्य द्वार के रूप में कार्य करते थे, तथा भारत के अरिकामेडु जैसे तटीय केंद्र शामिल थे जो इंडो-रोमन व्यापारिक चौकी के रूप में प्रतिष्ठित थे।

4.6 सहायक सामग्री (Recommended Readings)

- Doney, Lewis. 'Padmasambhava in Tibetan Buddhism' in Silk, Jonathan A. et al. Brill's *Encyclopedia of Buddhism*, pp. 1197-1212. BRILL, Leiden, Boston.
- Ines Konczak-Nagel, Monika Zin, *Essays and Studies in the Art of Kucha*, Dev Publishers & Distributors, 2020. (Introduction).
- Kurt Behrendt, *Tibet and India: Buddhist Traditions and Transformations*, The Metropolitan Museum of Art; Distributed by Harry N. Abrams; 1st edition, 2014.
- Lokesh Chandra and Nirmala Sharma, *Buddhist Paintings of Tun-Huang*, Niyogi Books, 2012.
- Radha Madhav Bharadwaj, 'Atisa' in Sarao, KTS and Long, Jeffrey D. (eds), *Buddhism and Jainism*, - Encyclopaedia of Indian Religions, vol.1, Springer, The Netherlands, pp. 195-197 (e Book ISBN-978-94-024-0852-2; ISBN-978-94-024-0853-9 Print and electronic bundle).

- Rajeshwari Ghose, (ed.) *Kizil on the Silk Road: Crossroads of Commerce and Meeting of Minds*, Marg Foundation, 2008, pp. 8-23 and 106-115.
- Translation of Kumarajiva's biography as it is told in the Gaoseng zhuan compiled by Hui Jiao of the Liang Dynasty (502-551 CE).

20CUS01670

20CUS01670